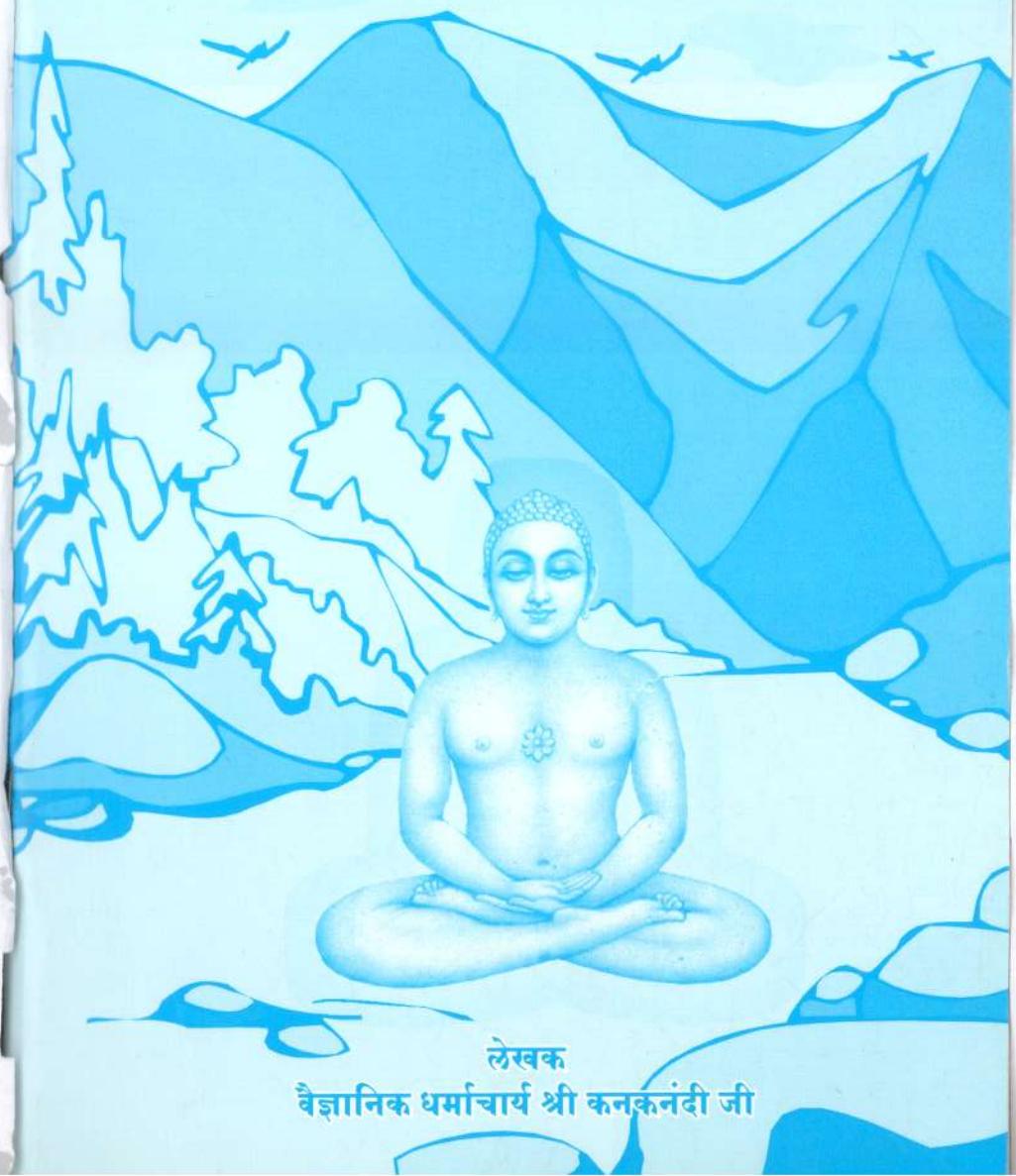
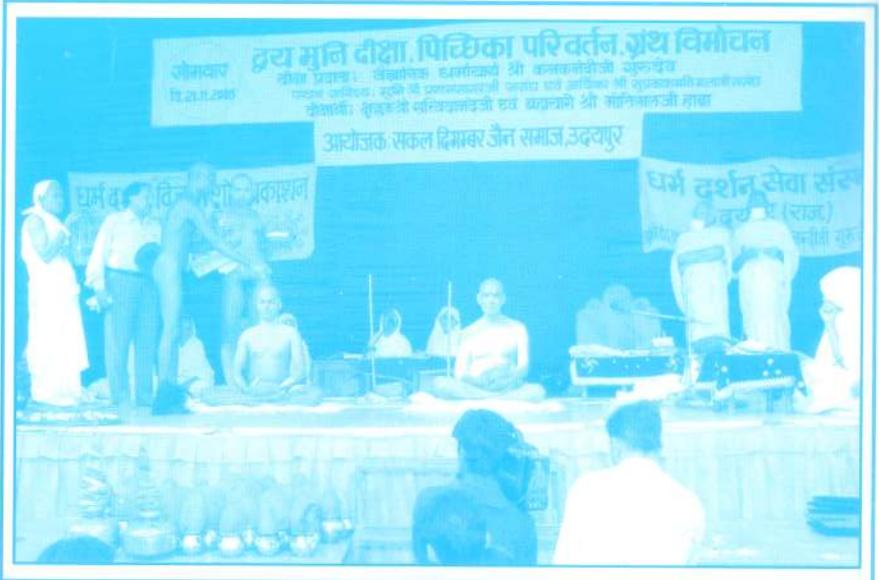


अहिंसामृतम्



लेखक

वैज्ञानिक धर्मचार्य श्री कनकनंदी जी



मुनि सच्चिदानन्द एवं मुनि चिन्मयानन्द को दीक्षा प्रदान करते हुए आचार्य कनकनन्दी।
उपस्थित हैं दिं० एवं इं० जैन सम्प्रदाय के अनेक साधु-साधिवाँ
तथा



दोनों सम्प्रदाय के 4-5 प्रदेश के धर्मबन्धु एवं अनेक मंत्री, नेता आदि।

अहिंसामृतम्

पावन—स्मरण

**29 वाँ धर्म दर्शन विज्ञान प्रशिक्षण
शिविर—चीतरी**

संस्थान के नये सदस्य

आजीवन सदस्य— 1 सेठ धनराज (चीतरी)

2 सेठ होकमचन्द (चीतरी)

त्रिवार्षिक सदस्य— 1 नरेश कुमार जैन (चीतरी)

वार्षिक सदस्य— 1 आनन्दीलाल जी जैन पण्डित जी (चीतरी)

प्रकाशक एवं द्रव्यदाता

धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान (बड़ौत)

धर्म दर्शन सेवा संस्थान (उदयपुर)

धर्म दर्शन विज्ञान शोध एवं सेवा संस्थान (उदयपुर)

शाखा—सागवाड़ा

लेखक :— धर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव

—५००१२७३६०—०९६८—५५५५५५—३०८६१५०—०९६८—५८८८

अहिंसामृतम्

लेखक :— धर्मचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

ग्रंथांक—167

द्वितीय संस्करण—2007

प्रतियोगी—1000

मूल्य—25 रुपये (पुनः प्रकाशनार्थ)

मुद्रांकन :— मुनि तीर्थ नन्दी

मुद्रक :— सीमा प्रिण्टर्स, उदयपुर

फोन : 0294—3295406

मुद्रक शोधन एवं लेखन सहायकः—

मुनि श्रुत नन्दी जी, मुनि चिन्मयानन्द जी, मुनि आध्यात्म नन्दी जी
आ. ऋद्धि श्री, ब्र. सोहन लाल जी देवडा, ब्र. संध्या, मौसम, जीना,
सुनाक्षी, निकिता, हीनल, ऋद्धि, पायल, निलम, अंकिता, निशिका,
दर्शन, विकास, दिक्षांत, अभिनव, हार्दिक, हर्षिता, कल्पेश (चीतरी)

प्राप्ति स्थान

धर्म दर्शन सेवा संस्थान,

द्वारा— छोटू लाल चितौड़ा,

चंद्र प्रभ दि. जैन मंदिर आयड़,

आयड बस—स्टॉप के पास उदयपुर— 313001(राज.)

फोन नं.— (0294) 2413565. 6941114, Mo.—9887370057

आशीर्वाद

इस सृष्टि में नाना प्रकार के जीव—जन्तु विचरण करते रहते हैं जिनमें एक मनुष्य ही विचारशील प्राणी है जिसके कारण वह अन्य समस्त प्राणियों में समर्थ है, शेष निरीह हैं। किन्तु मानव अपने पापकर्मों के कारण इन निरीह प्राणियों का वध करते हैं, कुछ ने इन्हें अपने खाद्य में मान लिया है, बिना यह विचारे कि जैसे उन्हें स्वयं को इस जगत् में रहने का अधिकार है, उसी प्रकार अन्य जीवों को भी है। इसी कारण तीर्थकरों ने अहिंसा का सबसे अधिक महात्म्य बतलाया है। जैन दर्शन में ‘अनेकान्त दर्शन’ के अतिरिक्त ‘अहिंसा परमो धर्म’ सिद्धान्त को ही सर्वोपरि माना गया है। अहिंसा न केवल इस जगत् में प्राणिमात्र को सुख, शान्ति देती है वरन् अमृत की भाँति मनुष्य को अमरत्व अर्थात् शाश्वत पद प्रदान करती है। इसी अभिप्राय से आचार्य कनकनन्दी ने इस ‘अहिंसामृतम्’ की रचना की है। उन्हें इस वर्तमान समय के अनुकूल रचने के लिये मेरा आशीर्वाद है। सभी मनुष्यों को न केवल इसका अध्ययन करना है वरन् अपने जीवन में भी उतारना है, तभी इनकी रचना व आपका अध्ययन सार्थक है। इसके प्रकाशन में सहायक साधुगण, प्रकाशक तथा सम्पादक को मेरा शुभाशीर्वाद।

मुजफ्फरनगर

गणधरराचार्य कुन्थुसागर

22—11—1990

(प्रथम संस्करण से)

1 अपने विचारों का द्रोही न बन, अपने प्रति ईमानदार रह और विचारों पर अमल कर, तू जरुर कामयाब होगा। सच्चे और सरल हृदय से प्रार्थना कर, तेरी प्रार्थनाएँ जरुर सुनी जायेंगी। — सन्त ज्ञानेश्वर

2 जो व्यक्ति ऊँचे विचारों की सुखद संगति में रहते हैं वे कभी अकेले नहीं रहते। — फिलिप सिडनी

3 यदि आप इस प्रतीक्षा में रहें कि दूसरे लोग आकर आपको सहायता देंगे तो हमेशा प्रतीक्षा ही करते रहेंगे। — जार्ज बर्नाडिश

4 यदि आप किसी से वायदा करते हैं तो अपने ऊपर एक कर्ज चढ़ा लेते हैं। — टालमड

5 जो यहीं सोच—सोच कर डरता है कि कहीं हार न जायें, वह निश्चित रूप से हारेगा। — नेपोलियन

6 छठांक भर वैज्ञानिक विचार मन भर अज्ञान पूर्ण उत्साह से बढ़कर है। — हेवर्ड

मंगलमय आशीष

जैसे जीवित रहना स्वयं का जन्मगत स्वाभाविक अधिकार है, उसी प्रकार दूसरे जीवों का भी अधिकार है संसार में जीवित रहने का। जीवित रहना जैसे स्वयं का अधिकार है तो दूसरों को जीने देना भी प्रत्येक जीव का प्रथम एवं प्रधान कर्तव्य है। जो दूसरों को सुख पहुँचायेगा, वह स्वयं भी सुख प्राप्त करेगा एवं जो दूसरों को कष्ट देगा वह स्वयं भी कष्ट प्राप्त करेगा। इसीलिये पूर्वाचार्यों ने कहा है "जीव वहा आदा वहा हवदि" अर्थात् जीवों के वध स्वयं के वध हैं, क्योंकि जो दूसरों को कष्ट देता है, वह पहले अपने परिणाम को दूषित कर देता है। बिना दूषित परिणाम हुए दूसरों को क्षति नहीं पहुँचा सकता है। आत्म-परिणाम का दूषित होना ही स्वयं की प्रधान भाव हिंसा है। भाव हिंसा होते हुये दूसरों को कष्ट नहीं पहुँचने पर भी हिंसा होती है। अतएव स्वयं के परिणाम को अहिंसामय शुद्ध रखना ही यथार्थ से अहिंसा है। भाव-अहिंसा रखते हुए कदाचित् द्रव्य हिंसा होने पर भी यथार्थ से हिंसा का दोष नहीं लगता है। इसीलिये लोक में कहते हैं "आप भला तो जग भला" इसीलिये अहिंसा का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वयं अहिंसक होना चाहिए। "अधिक रोगी को अधिक औषधि की आवश्यकता होती है" इस न्याय से वर्तमान युग में हिंसा का बोल बाला सम्पूर्ण क्षेत्र में है। इसीलिये वर्तमान युग में अहिंसा की आवश्यकता अधिक है, इस आवश्यकता को दृष्टि में रखकर हमने विभिन्न धर्मों में वर्णित अहिंसा का संकलन इस कृति में किया है। इस कृति का नाम "अहिंसामृतम्" है। जिस प्रकार लोक प्रसिद्ध है कि अमृतपान से जीव निरोगी होकर अजर-अमर हो जाता है, उसी प्रकार जो अहिंसा रूपी अमृत का पान करता है, वह यथार्थ से सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक रोग से निवृत होकर अक्षय मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है।

इस पुस्तक के संकलन एवं लेखन में जो मेरा श्रम हुआ है वह श्रम तब सार्थक होगा जब एक भी जीव इस कृति का अध्ययन करके पूर्ण नहीं तो आंशिक भी आचरण करने लगेगा। अखिल जीव जगत् अहिंसामृतम् का पान करते हुए शाश्वतिक अजर-अमर अमृत तत्त्व को प्राप्त करे, इन शुभकामनाओं के साथ।

आचार्य कनकनंदी
प्रथम संस्करण से (1890)

बनो अहिंसा के पुजारी

भौतिकता का अम्बर ओढ़े दुनिया बनी दीवानी,
फैशन और मेकअप में इनकी गुजर रही जिंदगानी।

मालुम नहीं है उन पशुओं की इन्हें दुखद कहानी,
उन भोले जीवों के दुःख में है दुःखी अहिंसा रानी।

चलते -फिरते उन पशुओं पर जब चलती तीर कमानी,
धराशायी हो जाते वे कौन सुने उनकी दुःखी वाणी।

मशीनों के द्वारा मारी जाती है जल की वह रानी,
उस छेल मछली के रक्त से बनती होठों की लाली।

जन्म देते ही बालक की न सुन पाती किलकारी
उन दिलों से पूछों कैसे तड़प-तड़प रुदन मचाती।

गर्दन उनकी धड़ से उड़ाकर चमड़ी निकाली जाती,
उसी त्वचा से बनती है पर्स केप और कोट तुम्हारी।
दहेज की आग में आज जल रहीं हिन्द की नारी,
किर भी धन चाह मिटी न चढ़ी फैशन की सवारी।

फैशन में क्यों खो बढ़े हो अपनी करुणा सारी,
गुरु तुम्हारे अपरिग्रही हैं वेष दिगम्बर धारी।
तुम भी बन जाओ प्यारे इस पुस्तक को पढ़कर,
गुरु "कनकनंदी" सम आदर्श अहिंसा के पुजारी।

आदमी के हृदय में अनुराग होना चाहिए।
आदमी के जिगर में आग होना चाहिए।

इन सब बातों को बतलाने के लिए।

आचार्य कनकनंदी जैसा संत होना चाहिए।

गुरुभक्ता—आ. क्षमा श्री

विषय – सुची

अध्याय

	पृष्ठ संख्या
1. संकीर्ण स्वार्थ पूर्णअहिंसा तथा उदार निःस्वावार्थपूर्ण अहिंसा	7
2. अहिंसा ही अमृत, हिंसा ही महाकाल (I) अहिंसा, हिंसा परिभाषा (II) आत्म अहिंसक परम अहिंसक (III) सर्व ब्रताधार अहिंसा का महात्म्य	12 17 18 21
3. अहिंसा के सार्थक 60 नाम (I) अहिंसा व्रती चाण्डाल, देवों द्वारा पूजित	25 30
4. आत्म हिंसक परम हिंसक (I) हिंसा के प्रभेद (II) अहिंसा प्रतिज्ञा बिना हिंसा (III) हिंसा फल वैचित्र्य (IV) हिंसा का फल	32 32 33 33 37
5. अन्य की रक्षा स्व की रक्षा	38
6. महाभारत में वर्णित अहिंसा (I) अहिंसा (मद्य मांस मधु त्याग) का फल (II) हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ (II) हिंसात्मक यज्ञ का निर्णय देने का फल (IV) मांस त्यागियों के नाम (V) हिंसा और मांस भक्षण की घोर निन्दा (VI) मांस भक्षण का फल (VII) विभिन्न ग्रन्थों में हिंसा एवं अहिंसा का वर्णन (VIII) हिंसा एवं असत्य का भयावह परिणाम (X) Let me bring love (XI) मेरी भावना	45 46 49 50 51 55 58 58 60 63 64

अध्याय–1

संकीर्ण-स्वार्थपूर्णअहिंसा-तथा उदार-निःस्वार्थपूर्णअहिंसा

(मत्स्य पालन, मुर्गीपालनादि जो मांसादि के लिए होता है वह क्रूरता है। गो—वत्स्य सम जो निस्वार्थ निर्मल प्रेम है वह धर्मानुकम्पा है। गो पालन भी यदि बाद में हत्या के उद्देश्य से किया जाता है तो वह भी क्रूरता है।)

स्वभाव का सर्वदा, सर्वथा अभाव नहीं होता परन्तु स्वभाव का परिणमन सतत होता रहता है। स्वभाव / द्रव्य / परिणाम यदि शुद्ध है तो उस का परिणमन शुद्ध होगा यदि अशुद्ध है तो परिणमन अशुद्ध होगा यदि मिश्र तो परिणमन मिश्र होगा। उदाहरणतः यदि सोना शुद्ध है तो उससे जो अलंकार आदि बनेंगे वे शुद्ध होंगे यदि अशुद्ध है तो अशुद्ध तथा मिश्र है तो मिश्र बनेंगे। इसी प्रकार आत्मा का शुद्ध स्वरूप अनन्त चेतना (ज्ञान, दर्शन) सुख-शांति, वीर्य (शक्ति) अहिंसा / समता आदि गुणों से युक्त है। परंतु कर्म के मिश्रण / बन्ध के कारण उपर्युक्त गुणों में ह्लासता, सुप्तता, निष्क्रियता, विकृति, अशुद्धता आ जाती है। जिस जीव का उद्देश्य, लक्ष्य, भाव अशुद्ध, संकीर्ण, स्वार्थ—निष्ठ होता है उसकी अनुकम्पा, अहिंसा, सेवा, क्रियादि तदनुकूल ही होगी भले बाह्य में देखने में कुछ भी हो। जैसा कि मांस के लिए जो मुर्गी पालन, मत्स्य पालन, पशु पालन करते हैं तथा भले उन प्राणियों के लिए रहने की, भोजन की, स्वास्थ्य की, शारीरिक विकास की व्यवस्था करते हैं तथापि यह सब धर्मानुकम्पा, दया, करुणा, परोपकार से युक्त नहीं। इसी प्रकार मद्य, बीड़ी, सिंगरेट, तम्बाखू, गुटखा, अफीम, आरंकवाद, दादागीरी, ठगगीरी, शोषण, भ्रष्टाचार आदि को प्रश्रय देना, उन्हें सहयोग करना, उनकी व्यवस्था करना आदि भी धर्म नहीं है, दया, करुणा नहीं है, भले यह कार्य धर्म के नाम पर, राष्ट्र के नाम पर, संगठन के नाम पर भी क्यों नहीं हो। इसके विपरीत अच्छे उद्देश्य, अच्छी भावना से कुमार्ग में चलने वालों को सही मार्ग में लाने के लिए यदि प्रताङ्गित किया जाता है, दंडित किया जाता है, उनका असहयोग किया जाता है तो भी यह सब धर्म हैं, धर्मानुकम्पा है। भले बाहर में देखने में कुछ भी लगता हो। जो साधु—संत, समाज सुधारक, नेता, वैज्ञानिक या लेखक आदि ब्रह्मचर्य में रहते हैं, गृहविरत रहते हैं, गृहत्याग करते हैं, भले इससे दूसरों को तात्कालिक, स्वार्थ—निष्ठ, संकीर्ण कारणों से कष्टकर अनुभव क्यों नहीं होता हो तथापि यह कार्य अयोग्य नहीं है। किंतु कोई एक व्यक्ति समाज / राष्ट्र की सेवा के बहाने कुछ बाह्यतः देखने में अच्छे कार्य करते हों परंतु यदि स्वार्थ—सिद्धि के लिए, सत्ता—संपत्ति के लिए यह कार्य करते हैं तो यथार्थ से यह योग्य कार्य नहीं है। इसी प्रकार संकीर्ण, धार्मिक पंथ—मत, परंपरा के अनुयायी बनकर केवल उसकी रीति—रिवाज, परंपरा, पूजा—पाठ, उपासना, पर्व, त्योहार, शिक्षण—प्रशिक्षण, प्रचार—प्रसार, शिक्षा—दीक्षा करने मात्र से धर्मानुकम्पा नहीं हो जाती है यदि उसके भाव, उद्देश्य में सत्यनिष्ठा, उदारता, सरल—सहजता, पवित्रता, नम्रता, कर्तव्यनिष्ठा, कोमलता, दया,

करुणा आदि नहीं हैं। अनुकम्पा, दया/अहिंसा के स्वरूप एवं विभिन्न रूपों का दिग्दर्शननिम्न प्रकार है –

अणुकंपासुदधुवओगो वि य पुण्णस्स आसवदुवारं।
त विवरीद आसवदारं पावस्स कमस्स ॥ 828 भ. आ.

अनुकम्पा और शुद्ध उपयोग पुण्य कर्म के आसव के द्वार हैं। और अनुकम्पा तथा शुद्ध उपयोग से विपरीत परिणाम पाप कर्म के आसव के द्वार हैं।

A. अनुकम्पा :— अनुकम्पा के तीन भेद हैं— 1. धर्मानुकम्पा 2. मिश्रानुकम्पा 3. सर्वानुकम्पा। 1. धर्मानुकम्पा :— जिन्होंने असंयम का त्याग कर दिया है, मान, अपमान, सुख-दुःख, लाभ-अलाभ तथा तृण-सुवर्ण आदि में जिनका समभाव है, इंद्रिय और मन का जिन्होंने दमन किया है, जो माता के समान मुक्ति के आश्रित हैं, जिन्होंने उग्र कथाय विषयों का परित्याग किया है, दिव्य भोगों में दोषों का विचार करके विरागता को अपनाया है, संसार रूपी महासुमुद्र के भय से रात्रि में भी जो अल्पनिद्रा लेते हैं, जिन्होंने निःसंगता को स्वीकार किया है और जो उत्तम क्षमा आदि दस प्रकार के धर्मों में लीन हैं उनमें जो अनुकम्पा है उसे धर्मानुकम्पा कहते हैं। उस धर्मानुकम्पा से प्रेरित होकर विवेकीजन उन मुनियों के योग्य अन्न-पान, वसतिका आदि संयम के साधन प्रदान करते हैं। अपनी शक्ति को न छिपाकर उपसर्ग और दोषों को दूर करते हैं। “हमें आज्ञा कीजिए” इस प्रकार निवेदन करके सेवा करते हैं। जो मार्ग से भ्रष्ट हो जाते हैं उन्हें सन्नार्थ दिखलाते हैं। उन मुनियों का संयोग प्राप्त होने पर “अहो हम बड़े पुण्यशाली हैं” इस प्रकार विचार कर प्रसन्न होते हैं। सभाओं में उनके गुणों का बखान करते हैं। उनको गुरु के समान मानते हैं। उनके गुणों का सदा स्मरण करते हैं कि कब उनका समागम हो। उनके संयोग की अभिलाषा रखते हैं। दूसरों के द्वारा उनके गुणों की प्रशंसा सुनकर संतुष्ट होते हैं। इस प्रकार अनुकम्पा में तत्पर साधु गुणों की अनुमोदना करने वाला होता है। पूर्व ज्ञानियों ने बंध को तीन प्रकार से कहा है। स्वयं करने से, दूसरों से कराने से और दूसरों के करने पर उनकी अनुमोदना करने से। अतः महागुणशाली मुनियों को देखकर हर्ष प्रगट करने से महान् पुण्यास्व होता है।

2. मिश्रानुकम्पा—जो महान् पाप कर्म के मूल हिंसा आदि से निवृत्त हैं, संतोष और वैराग्य में तत्पर हैं, विनीत हैं, दिग्विरति, देशविरति और अनर्थदंडविरति को धारण किये हुए हैं, तीव्र दोषवाले भोग-उपभोगों का त्याग करके शेष भोगों का जिन्होंने परिमाण कर लिया है, जिनका चित्त पाप से भीत रहता है, जो विशिष्ट देश और काल में सर्व सावध का त्याग करते हैं अर्थात् त्रिकाल सामायिक करते हैं, पर्व के दिनों में समस्त आरंभ को त्याग उपवास करते हैं उन संयमासंयमियों में जो अनुकम्पा की जाती है वह मिश्रानुकम्पा है। मैं जिलाता हूँ ऐसा मान जो जीवों पर दया तो करते हैं किंतु पूर्ण रूप से दया को नहीं जानते ऐसे जो जिनागम से बाह्य अन्य धर्मों को मानने वाले विनयी तपस्वी हैं कष्टदायक तपस्या करते हैं उनमें अनुकम्पा भी मिश्रानुकम्पा है। उससे सब जीव पुण्य कर्म का संचय करते हैं। कहा भी है –

देश प्रवृत्तिर्गृहिणामकृत्स्नात् मिथ्यात्वदोषोपहतोन्य धर्मः।

इत्येषु मिश्रो भवतीति धर्मो मिश्रानुकम्पामवगच्छेज्जन्तुः।।।

सदृष्ट्यो वापि कुदृष्ट्यो वा स्वभावतो मार्दवसंप्रयुक्ताः।।।

यां कुर्वते सर्वशरीरवर्गे सर्वानुकम्पेत्यभिधीयते सा ॥।।।

गृहस्थ एक देश में प्रवृत्तिशील होने से पूर्ण संयम का पालक नहीं होता। तथा मिथ्यात्व के दोष से सदोष अन्य धर्मवालों में अनुकम्पा मिश्रानुकम्पा है। सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि जो स्वभाव से ही मार्दव भाव से युक्त हैं वे जो समस्त प्राणियों में अनुकम्पा करते हैं उसे सर्वानुकम्पा कहते हैं।

जिनके अवयव कट गये हैं, जो बांधे गये हैं, रोके गये हैं, पीटे गये हैं, खाये गये हैं ऐसे निरपराधी अथवा अपराधी मनुष्यों को देखकर तथा मृणों, पक्षियों, सरीसृपों और पशुओं को मांस के लिए दूसरे लोगों के द्वारा मारा जाता है अथवा उन्हें परस्पर में ही एक दूसरे की हिंसा करते और एक दूसरे का भक्षण करते देखकर, तथा कुंथ, चीटी आदि अनेक छोटे जंतुओं को मनुष्य, ऊँट, गधा, शर्म, हाथी, घोड़े आदि के द्वारा कुचले जाते देखकर, तथा असाध्य रोग रूपी सर्प के द्वारा डासे जाने से पीड़ित “मैं मर गया”, “मैं नष्ट हो गया” इत्यादि चिल्लाने वाले रोगियों को देख कर तथा जिनकी अवस्था अभी मरने की नहीं है, ऐसे गुरु, पुत्र, स्त्री, आदि का सहसा वियोग हो जाने से चिल्लाते हुए, अपने अंगों को शोक से पीटते हुए, कमाये हुए धन के नष्ट हो जाने से दीन हुए तथा धीर्य, शिल्प, विद्या और व्यवसाय से रहित गरीब प्राणियों को देख उनके दुःख को अपना ही दुःख मानकर उसको शांत करना अनुकम्पा है।

सुदुर्लभं मानुषजन्म लब्ध्वा मा क्लेशपात्राणि वृथैव भूता।

धर्मं शुभे भूतहिते यत्ध्वमित्येवमाद्यैरपि चौपदेशैः।।।

“अति दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर वृथा ही क्लेश के पात्र मत बनो। प्राणियों के लिए कल्याणकारी धर्म में मन लगाओं” इत्यादि उपदेशों के द्वारा किए गये अथवा भविष्य में किये जाने वाले उपकार की उपेक्षा के बिना अनुकम्पा करना चाहिए।

पुण्यास्वं सा त्रिविधानुकम्पा सुतेषु पुत्रं जननी शुभेव।

श्वेतानुकम्पा प्रभवाद्विपुण्यान्नाके मृता अभ्युपत्तिमीयुः।।।

ये तीनों प्रकार की अनुकम्पा पुण्य कर्म का आसव करती है। वह जैसे माता पुत्र के लिए शुभ होती है उसी प्रकार शुभ है। उस अनुकम्पा से हुए पुण्य के विपाक से मरकर स्वर्ग में देव होते हैं।

B. शुद्ध संप्रयोग — शुद्ध प्रयोग के दो भेद हैं — एक यति संबंधी शुद्ध संप्रयोग और दूसरा गृहस्थ संबंधी शुद्ध संप्रयोग।

1. यति का शुद्ध संप्रयोग — मैं जीवों का धात नहीं करूँगा। झूठ नहीं बोलूँगा। चोरी नहीं करूँगा। भोगों को नहीं भोगूँगा। धन का सेवन नहीं करूँगा। शरीर में अत्यन्त कष्ट होने पर भी रात्रि में भोजन नहीं करूँगा। शुभ दीक्षा लेकर बहुदोष पूर्ण क्रोध, मान, माया, लोभ से आरंभ और परिग्रह से संबंध नहीं रखूँगा। जैसे कोई मनुष्य सिर

पर मुकुट माला धारण करके और हाथ में धनुष बाण लेकर भिक्षा माँगे तो शोभा नहीं देता। उसी प्रकार यदि मैं दीक्षा लेकर लज्जा त्याग कर, दोषों को वहन करूँ तो शोभा नहीं देता। महान् ऋषियों का लिंग स्वीकार करके और स्नान आदि के बिना शरीर धारण करके व्रतों के भंग का विचार न करते हुए काम सेवन आदि का संसर्ग मैं कैसे कर सकता हूँ। मैं धैर्य खोकर दीन बनकर अनार्यों के द्वारा आचरण करने योग्य चर्या कैसे कर सकता हूँ। शरीर में विकार युक्त होकर घूमने पर साधू होकर सिर मुंडाना व्यर्थ है इत्यादि प्रकार से शुभ कर्म की चिंता करना सिद्ध, अर्हिंत, आचार्य, उपाध्याय, प्रतिमा, संघ और जिनशासन में भक्ति, वैराग्य गुणों में अनुराग, विनय युक्त प्रवृत्ति, संयम, अप्रमादिपना, परिणामों में कोमलता, क्षमा, आर्जव, संतोष, आहारादि संज्ञा, मिथ्यात्व आदि शल्य और ऋद्धि आदि के मद को जीतना, उपर्सर्ग और परिषह को जीतना, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सराग संयम, दस प्रकार का धर्म ध्यान, जिन पूजा, जिन पूजा का उपदेश, निःशक्ति आदि आठ गुण, प्रशस्तराग, तपो भावना, पांच समिति, तीन गुणित इत्यादि शुद्ध संप्रयोग हैं।

2. गृहस्थों का शुद्ध संप्रयोग— ग्रहण किये हुए व्रतों के धारण और पालन की इच्छा एक क्षण के लिए भी व्रत भंग को इष्ट न मानना, निरन्तर यतियों को दान देना, श्रद्धा आदि विधिपूर्वक अन्न आदि देना, भोगों को भोगकर भी थकान दूर करने के लिए अपनी भोगासक्ति की निन्दा करना, सदा घर छोड़ने की भावना करना, धर्म श्रवण करने को मिले तो मन का अति तुष्ट होना, भक्तिपूर्वक पंचपरमेष्ठी का स्तवन और प्रणाम करना, उनकी पूजा करना, दूसरों को धर्म में स्थिर करना, धर्म को बढ़ाना, साधर्मोवात्सल्य, जिनेन्द्र देव के भक्तों का उपकार करना, जिन शास्त्रों का अभ्यास करना, जिनशासन की प्रभावना करना आदि श्रावकों का शुद्ध संप्रयोग है। अनुकम्पा और शुद्ध संप्रयोग से विपरीत परिणाम अशुभ कर्म के आस्रव के द्वार हैं।

अशुद्ध भाव से पाप बंध होता है तथा पाप से इहलोक—परलोक में विभिन्न प्रकार के शारीरिक, मानसिक, भौतिक, सामाजिक, प्राकृतिक, आदि दुःख होते हैं। शुभ भाव से नवीन पाप बन्ध नहीं होता है, प्राचीन पाप की निर्जरा (ह्रास) होती है तथा पुण्य बन्ध के कारण इस जन्म में तथा पर जन्म में विभिन्न प्रकार के शारीरिक, मानसिक, भौतिक, सामाजिक, प्राकृतिक आदि सुख प्राप्त होते हैं। शुद्ध पवित्र भावना से समस्त प्रकार के कर्म नष्ट हो जाते हैं जिससे अक्षय, अनन्त आध्यात्म, आत्मोत्थ सुख—शांति, अहिंसा—समता, ज्ञान, वीर्य की उपलब्धि होती है।

यो न हन्ति न धातेति, न जिनाति न जापते।

मित्तं सो सव्वभूतेसु वेरं तस्स न केनचीति ॥। महात्मा बुद्ध

जो न स्वयं किसी का धात करता है, न दूसरों से करवाता है, न स्वयं किसी को जीतता है, न दूसरों को जीताता है, वह सर्व प्राणियों का मित्र होता है, उसका किसी के साथ बैर नहीं होता।

“आत्मानः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।” मनुस्मृति

जो कार्य तुम्हें पसन्द नहीं है, उसे दूसरों के लिए कभी मत करो।

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं,
विलष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम् ।
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातुदेव ॥। भावनाद्वात्रिंशतिका

हे भगवान् ! मेरा प्रत्येक जीवों के प्रति मैत्री भाव रहे, गुणीजनों में प्रमोद भाव रहे, दुःखीजनों के लिए करुणा भाव रहे, दुर्जनों के प्रति मेरा माध्यस्थ भाव (साम्यभाव) रहे।

एकेन्द्रिय जीव से लेकर प्रायः पशु तक प्रचलित किसी भी धर्म के अनुयायी नहीं होने पर भी जैसे प्रायः प्रत्येक धर्मावलम्बी उन्हें विधर्मी मानकर घृणा, द्वेष, भेद—भाव, छूआ—छूत आदि नहीं करते हैं; उसी प्रकार जो मनुष्य अन्य धर्म को मानते हैं उनके साथ मैं घृणादि न करके मैत्री भाव रखना चाहिए। परंतु खेदात्मक आशर्य यह है कि विधर्मी पशु आदि के प्रति जो घृणादि भाव नहीं करते वह घृणादि भाव विधर्मी मनुष्य (यहाँ तक कि स्व—धर्म के भिन्नपथ को मानने वालों के प्रति भी करते हैं), इतना ही नहीं अपने भाई—बन्धु, गुरु—शिष्य के प्रति भी करते हैं। गुणीजन प्रति प्रमोद माने गुण प्रति ही प्रमोद है। परंतु अधिकांश व्यक्ति गुणी के प्रति भी घृणादि करते हैं। जहाँ विलष्ट, दुःखी, विपत्र, असहाय, असमर्थ मनुष्य या अन्य पशु—पक्षी आदि जीव के प्रति कृपा, सेवा, सहायता, सुरक्षादि करना चाहिए। परंतु सत्ता—संपत्ति—शक्ति से युक्त जीवों के प्रति तो सहानुभूति आदि भाव रखते हैं परंतु असहाय आदि जीवों से क्रूरतादि का व्यवहार करते हैं। यथा— दुष्ट भी किन्तु धनी, राजा, नेता, आदि से अच्छा व्यवहार करेंगे परंतु गरीब आदि मनुष्य तथा पशु—पक्षी के प्रति क्रूरता का व्यवहार करेंगे। जिसके भाव, व्यवहार, धर्मादि विपरीत हैं उसके प्रति भी साम्यभाव रखकर समता का व्यवहार करना चाहिए। नहीं तो मत्स्य न्याय से एक दूसरों को कष्ट देने की शृंखला कभी भी समाप्त नहीं होगी। ऐसे भाव, व्यवहार से युक्त जीव ही धर्मानुकम्पादि गुणों से युक्त है, अन्यथा उसके अहिंसा, सेवा, परोपकारादि गुण यथार्थ नहीं हैं।

धर्म पुरुषार्थ—धार्मिक कार्यक्रम, धार्मिक पंथ—मत—सम्प्रदायों में भी धर्म के जो यथार्थ स्वरूप समता, सहिष्णुता, शान्ति पवित्रता, सहज—सरलता, प्रेम, सहयोग, परोपकार, एकता, दया, क्षमा, निर्लोभता, त्याग, सादा जीवन—उच्च विचार आदि हैं प्रायः उससे विपरीत विषमता, असहिष्णुता, अशान्ति आडम्बर दिखावा आदि पाई जाती हैं। बाह्य क्रिया—काण्ड, शारीरिक क्लेशकारक परन्तु भावात्मक संकलेश कारक भी क्रियाओं को धर्म मानते हैं। केवल केंचुली त्याग से विषधर सर्प जिस प्रकार और भी खतरनाक हो जाता है उसी प्रकार ऐसे धार्मिक व्यक्ति खतरनाक होते हैं।

अध्याय-२

अहिंसा ही अमृत, हिंसा ही महाकाल

क्षुद्रातिक्षुद्र एकेन्द्रिय जीव से लेकर विकासशील एवं विकसित पंचेन्द्रिय महासत्त्वधारी जीव तक सुख चाहते हैं एवं दुःख से घबराते हैं। इस सूक्ष्म गहन अध्ययन से अवगत होता है कि प्रत्येक जीव का शुद्ध स्व-स्वभाव अजर-अमर, अविनाशी, अनंतज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यमय अमृत स्वरूप है इसीलिये प्रत्येक जीव विपरीत स्वभाव रूप विनाश-मृत्यु, घात-उपधात, क्लेश, संकट से भयभीत होता है और उससे बचना चाहता है तथा जीवन में सुख-शांति, पूर्णता, अविनाशिता को चाहता है। इसलिये प्रत्येक जीव को चाह एवं अधिकार, जैसे जीने की है उसी प्रकार दूसरे जीवों को सुखमय जीवन जीने के अधिकार को भी स्वीकार करना चाहिये। इसलिये प्रत्येक युग में प्रत्येक महापुरुष “जीओ और जीने दो Live and Let Live का मंत्र विश्व के लिये दिया है। कोई भी जीव विश्व की सम्पूर्ण विभूति को लेकर भी अपने प्रिय प्राण देने के लिये तैयार नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि तीन लोक की विभूति से भी प्रिय प्राण का मूल्य बहुत अधिक है अतएव विश्व की किसी भी भौतिक सम्पत्ति, विभूति के लिये किन्हीं भी निरीह निर्दोष प्राणियों का हनन संकल्पपूर्वक नहीं करना चाहिये। स्व-पवित्र कर्त्तव्य का पालन करते हुए, जीवों की रक्षा की भावना से ओतप्रोत होकर मन, वचन, काय की प्रवृत्ति करते समय किसी भी जीव का घात होने पर भी जीव हिंसा का दोष नहीं लगता क्योंकि अन्तरंग दूषित भाव से प्रेरित होकर स्वपर को कष्ट देना ही हिंसा है।

लोक में अमृत शब्द का बहु-प्रचलन है। वस्तुतः अमृत ऐसी कोई एक भौतिक वस्तु नहीं है जिसके सेवन से जीव अजर-अमर बन जाता है परन्तु अहिंसा ही यथार्थ से अमृत है क्योंकि अहिंसा के सेवन से ही यह जीव अजर-अमर, शाश्वतिक अमृत स्वरूप मोक्ष तत्त्व को प्राप्त कर सकता है। शाब्दिक दृष्टि से भी विचार करने पर अहिंसा का अर्थ अमृत (अ+मृत=नहीं मरना) होता है। इस अहिंसा के बल पर ही जीव स्व-पर का घात नहीं करता है, जिससे अहिंसा ही स्व-पर के लिये अमृत स्वरूप है। जैसे, आकाश में सम्पूर्ण पदार्थ समाहित हैं, उसी प्रकार अहिंसा में सम्पूर्ण धर्म, कर्त्तव्य, न्याय, नीति, सदाचार निहित हैं। प्राचीन अहिंसा के मर्मज्ञों ने कहा भी है—

तच्छुद्धयशुद्धि बोधये न्यायान्प्रवृत्तितः।

न्यायो दयार्द्रवृत्तिवमन्यायः प्राणिमारणम् ॥

इस श्लोक में श्लोककार ने सम्पूर्ण धर्म, नीति एवं न्याय-नीति का सार भर दिया है। श्लोककार का कहना है कि शुद्धि, अशुद्धि, न्याय एवं अन्याय, हिंसा एवं अहिंसा में ही गर्भित है, जहाँ पर अहिंसा, दया, प्रेम, करुणा है, वहाँ पर ही शुद्धि, न्याय, नीति, सदाचार है एवं जहाँ पर हिंसा, क्रूरता, बर्बरता, ईर्ष्या, द्वेष हैं, वहाँ ही अशुद्धि एवं अन्याय है। इसलिये तो संस्कृत के महाकाव्य के रचयिता वेदव्यास ने कहा है—

अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परोदमः ।

अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः ॥

अहिंसा परमो यज्ञस्तथाऽहिंसा परम फलम् ।

अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परम सुखम् ॥

“सर्वभूतदया तीर्थं”

अहिंसा ही सर्व श्रेष्ठ धर्म है। अहिंसा ही परम दमन है। अहिंसा दान सर्व-श्रेष्ठ दान है। तप में अहिंसा सर्वोपरि है। यज्ञ में सर्वश्रेष्ठ यज्ञ अहिंसा यज्ञ है। अहिंसा सर्वश्रेष्ठ फल है। जीवों के लिए परम मित्र अहिंसा ही है। सर्वसुख में श्रेष्ठ सुख अहिंसा सुख है इतना ही नहीं, सर्व जीवों के ऊपर दया रूप अहिंसा ही परम-पवित्र सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है। केवल क्रूरता रूप से जीवों का संहार करना ही हिंसा नहीं है, परन्तु जीवन-यापन के लिए अल्प दोषप्रद शुद्ध शाकाहार को छोड़कर मांसाहार करना, शिकार खेलना, मुक्त विचरण करने वाले पशुओं को बन्धन में डालना, हिंसात्मक प्रणाली से बनी हुई प्रसाधन-सामग्रियों को प्रयोग में लाना आदि भी हिंसा ही है क्योंकि शाकाहारी के लिये जैसे, धान्य-फलादि वनस्पतियों से सरलता से प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार मांस किसी भी वनस्पतियों से नहीं मिलता है। मांस के लिये बकरा-गाय-भैंस, मुर्गा, मछली आदि बड़े-बड़े जीवों को निर्दय भाव से कत्ल करना पड़ता है। कत्ल के बाद भी वह मांस जीव से रहित नहीं है, क्योंकि मांस के प्रत्येक कण में जिस जीव का मांस है, उस जीव जाति के सूक्ष्म निगोदिया जीव असंख्यात कोटि प्रत्येक समय में रहते हैं। जैसे, उदाहरण रूप में गाय का मांस है, उस मांस में गौ जातीय पंचेन्द्रिय सूक्ष्म निगोदिया जीव होते हैं, वे मांस को पकाते समय भी रहते हैं, पक्व होने के बाद भी अर्थात् पकाने के बाद भी रहते हैं। मांस को छूने मात्र से अनेक जीव मर जाते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक समय में असंख्यात जीवों का घात होता रहता है। यह हुई द्रव्य हिंसा। बिना क्रूर निर्दय परिणाम से मांस के लिये किसी जीव का घात नहीं हो सकता है और भावों में जो कठोरता (निर्दय भाव) है, वही महान् भाव हिंसा है। इसलिये मांस भक्षण से द्रव्य हिंसा एवं भाव हिंसा होती है।

कोई जीव विचार करे कि स्वयं मरे हुए जीव के मांस के खाने में कोई दोष नहीं है, किन्तु उपरोक्त वर्णित तज्जातीय जीवों का सद्भाव होने से एवं उन जीवों का घात होने से निश्चित रूप से दोष लगता ही है।

कोई कहेगा कि बना हुआ मांस खरीदकर खाने पर किसी भी प्रकार का दोष नहीं लगेगा, परन्तु उस मांस में भी असंख्यात जीव रहते हैं। जिस मांस को बाजार से खरीद कर लाये हैं, उन जीवों की हिंसा होने से दोष निश्चित रूप से लगता ही है। इस प्रकार जो वधिक मनुष्य जीव-हिंसा करता है वह तो हिंसा का भागी ही है, परन्तु जो मांस पकाता है, वह भी हिंसा का भागी है। जो मांस परोसता है, वह भी दोष का भागी है, जो मांस खाता है, वह भी दोष का भागी है।

कोई-कोई जिहवा-लोलुपी, कुतर्की मूढ़ पुरुष मानते हैं कि आजकल

का कृत्रिम अण्डा (हायब्रेड अण्डा) जिसमें से जीव उत्पन्न नहीं होता है, वह अण्डा मांस नहीं है, शाकाहार है। परन्तु ऐसे अज्ञानी नहीं जानते हैं कि वह अण्डा, रज और वीर्य के संयोग से बना है, मुर्गी के गर्भ में अण्डा बढ़ा गर्भ से अण्डा निकलने के बाद भी कुछ समय तक वृद्धि को प्राप्त होता है। यदि जीव नहीं होता तो वह अण्डा बढ़ता कैसे ? बढ़ने के कारण अर्थात् वृद्धि होने के कारण उसमें जीव निश्चित है, परन्तु उसमें इतनी जीवन शक्ति नहीं है कि उससे मुर्गी का बच्चा उत्पन्न हो सके। जैसे, कुछ वृक्ष की शाखा को कलमी करने से नवीन वृक्ष उत्पन्न होते हैं और कुछ से उत्पन्न नहीं होते हैं, किन्तु दोनों प्रकार की शाखा जीव से संयुक्त है, दोनों शाखायें बढ़ती हैं, दोनों पत्ते पुष्प-फल धारण करते हैं। कदाचित् आपके मतानुसार पक्षी का जीव नहीं है, तो भी उस मांस में तज्जातीय जीव करोड़ों की संख्या में रहते हैं। अण्डा भक्षण में उन जीवों का धात होता ही है।

प्रकृति में एक प्रकार का सन्तुलन रहता है। सन्तुलन के अभाव में एक विक्षेप उत्पन्न होता है, जिससे अनेक प्राकृतिक विप्लव होते हैं, जैसे अनावृष्टि, दूषित वायुमण्डल, अनेक रोगों की उत्पत्ति आदि। उदाहरण स्वरूप, कुछ वर्ष पूर्व भारत सरकार ने खेत के लिये एवं औद्योगिक कार्य के लिये वन सम्पत्ति को काट डाला। वनस्पतियों की कमी से ऑक्सीजन (प्राण-वायु) का अभाव हुआ। उष्णता बढ़ी जिससे वर्षा होना कम हो गया। वातावरण दूषित हो गया। रोग की वृद्धि हुई, वनस्पति सम्पत्ति का हास हुआ। वन्य पशुओं का अभाव होने लगा।

ताप बढ़ने व अन्य गैसों जैसे, फीऑन (डाइक्लोरो डाई-फ्लोरो मीथेन) आदि के कारण पृथ्वी के ऊपर उपस्थित ओजोनोस्फीयर में विशेषतः उत्तरी ध्रुव पर लगभग 25 किमी, चौड़ा छिद्र बन गया है, जिससे सूर्य की परा बैंगनी किरणें (अल्ट्रा-वीयलेट रेज) शोषित न हो पाने से त्वचा रोग तथा अनुवांशिक तकनीकी (जिनेटिक इंजीनियरिंग) बदल जायेगी जिससे वैज्ञानिक व मनुष्य जाति अत्यन्त वित्तित है। इन सब उपरोक्त दुर्घटना को सरकार अनुभव करके पुनः वृक्षारोपण प्रारम्भ किया। यदि केवल निम्न श्रेणीय जीवों के धात से इतना विप्लव हो सकता है, तो क्या अभी जो सरकार पंचेन्द्रिय जीव गाय, बकरा, सुअर, मुर्गा, मछली आदि का निर्मम भावों से अरबों की संख्या में धात कर रही है, उससे क्या सफलता मिल सकती है अर्थात् तीन काल में भी नहीं मिल सकती है।

मांस में cholesterol (कोलेस्ट्रोल) विष रहता है। इससे Blood Pressure (रक्तचाप) बढ़ता है एवं श्वास फूलने लगती है, इसमें निहित तत्त्व C.27/. H. 46.0 है। मांस से कैंसर आदि भयंकर रोग होते हैं। इस के साथ-साथ जलाशय से मछली, मेंढक आदि को मारने से पानी दूषित एवं कीड़ों से भर जाता है। क्योंकि मछली आदि दूषित अंश को खाकर पानी को स्वच्छ रखते हैं। अस्वच्छ पानी के सेवन से रोग होते हैं।

पक्षियों को मारने से विषाक्त कीड़ों की संख्या बढ़ती है। सिद्धान्तः सम्पूर्ण विश्व प्रकृति का शरीर है। वनस्पति पशु, पक्षी मनुष्य, जलवायु, आदि

प्राकृतिक शरीर के अवयव स्वरूप हैं। जैसे एक मनुष्य के एक हाथ को कष्ट देंगे तो दूसरा हाथ नहीं सोचेगा कि मुझे तो कष्ट नहीं दे रहा है तो मैं उसका क्यों विरोध करूँ ? परन्तु शरीर एक होने से जिसको क्षति नहीं पहुँच रही है, वह हाथ भी शरीर की रक्षा के लिये एवं सुरक्षा के लिये विरोध करेगा, प्रतिकार करेगा। इसी प्रकार प्रकृति के किसी भी अवयव को यदि मनुष्य क्षति पहुँचाता है, तो मनुष्य को जान लेना चाहिए कि सम्पूर्ण प्रकृति उसके विरोध में विप्लव करेगी और मनुष्य समाज को धंस करके ही रहेगी।

मद्य मांसाशनं रात्रि भोजनं कन्दमक्षणम् ।

ये कुर्वन्ति वृथा तेषां, तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥ महा-

मद्यापान, मांस भक्षण, रात्रि भोजन, जमीकन्द-सेवन (आलू, प्याज, मूली, गाजर, लहसुन आदि) जो करता है अर्थात् खाता है उसकी तीर्थ यात्रा, जप-तप सब वृथा हो जाते हैं।

यावन्ति पशुरोमाणी पशुगात्रेषु भारतः ।

तावद्वर्षसहस्त्राणि पच्यते पशु धातकाः ॥

शुक्र शोणित संभूतं यो मांसं खादते नः ।

जलते कुरुते शौचं हसंते तत्र देवताः ॥

अस्थिनि वसति रुद्रस्तथा मांसे जनार्दनः ।

शुक्रे वसति ब्रह्मा तस्मान्मांस न भक्षयेत् ॥ विष्णु पुराण

पशु में जितने रोम रहते हैं, उस पशु के धात से वह पशु-धातक उतने ही हजार वर्ष नरक में कष्टों को प्राप्त करता है। जैसे, एक जीव में 100 रोम हैं तो उस पशुधातक को $100 \times 1000 = 1,00,000$ (एक लाख) वर्ष तक नरक में यातनायें भोगनी पड़ेगी। विचार करो कि एक जीव में कितने करोड़ रोम रहते हैं तो उस पशुधातक को नरक में कितने वर्षों तक दुःख उठाना पड़ेगा।

प्राणियों के शरीर का रज-वीर्य से निर्माण होता है, जो मांस-अण्डे वगैरह खाता है, वह दूषित रज वीर्य को खाता है। मांस खाकर ऊपर से पानी से शरीर की शुद्धि करने से कभी भी शुद्धि नहीं हो सकती इसलिये मांसभक्षी जल में शुद्धि करता है, तब देवता लोग उसे देखकर हंसते हैं।

जीव की हड्डी में रुद्र वास करते हैं, मांस में विष्णु वास करते हैं, शुक्र में ब्रह्मा वास करते हैं इसलिये मांस नहीं खाना चाहिये।

यूपं छित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिर कर्दमम् ।

यद्येवं गम्यते स्वर्गं नरकं केन गम्यते ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं सुसंयमः ।

मद्य मांसादि त्यागं धर्मस्य लक्षणम् ॥ महाभारत, शान्तिपर्व

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं सुसंयमः ।

मद्य-मांस-मधु त्यागो रात्रि भोजन वर्जनम् ॥ मारकण्डेय पुराण

जो यूप(यज्ञ की विशेष लकड़ी) को छेदकर, पशु को मारकर, रुधिर को कीचड़ बनाकर यदि स्वर्ग जावे तो नरक किस पाप से जायेगा ?

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, उत्तम संयम, मांसादि का त्याग धर्म के लक्षण हैं। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, उत्तम संयम, मद्य, मांस, मधु सेवन त्याग, रात्रि भोजन त्याग धर्म है। मांसाहारियों को ललकारते हुए कबीर दास ने कहा है— भांग, मछली, सुरापान, जो प्राणी खाये।

तीर्थ, बरत अरु नेम किये सबे रसातल जाये॥
भांग खाना, मछली खाना, और सुरापान जो—जो प्राणी करते हैं वे कितने भी तीर्थ यात्रा करें, व्रतादि पालन करें, नियम धारण करें तो भी वे सब रसातल (नरक) में जायेंगे।

मुसलमान मारे करद, हिन्दू मारे तलवार।

कह कबीर दोनों मिली, जाये जम के द्वार॥

मुसलमान करद (चाकू से गला काटता) करता है, हिन्दू तलवार से गला काटता है, कबीर कहते हैं कि मुसलमान और हिन्दू दोनों मिलकर यम के द्वार पर जायेंगे।

मांसाहारी मानव, परतछ राक्षस अंग।

तिनकी संगति मत करो, परत भजन में भंग॥

जो मांस खाता है, वह प्रत्यक्ष राक्षस है, उसकी संगति मत करो क्योंकि उससे भजन—कीर्तन में, प्रभु नाम गाने में, धर्म कार्य में विपत्ति आती है।

है भला तेरा इसी में, मांस खाना छोड़ दे।

इस मुबारक पेट में, कब्र बनाना छोड़ दे॥

इसी में तेरी भलाई है कि तू मांस खाना छोड़ दे, क्योंकि मांस खाने से तेरा पवित्र पेट कब्रखाना बन जाता है। तू नहीं खायेगा तो तेरा पेट कब्रखाना नहीं बनेगा।

जो शिर काटे और का, अपना रहे कटाय।

धीरे—धीरे नानका, बदला कहीं न जाय॥

जो दूसरों का सिर काटता है, उसका सिर एक न एक दिन कट जाता है। सिक्ख के आदि गुरु नानक देव कहते हैं कि बदला कभी चुकता नहीं है।

जो रक्त जगे कापड़े, जामा होवे पलित।

जे रक्त पिवे मानुषा, तिन क्यों निर्मल वित्त।

कपड़े में रक्त लगने पर कपड़ा अपवित्र हो जाता है और जो मनष्य रक्त पीता है, मांस खाता है, उसका मन पवित्र कैसे हो सकता है?

Thou shaln't kill इसा मसीह

कोई भी प्राणी को मत मारो।

हिंसा प्रसूतानि सर्व दुःखानि।

हिंसा सम्पूर्ण दुःखों को जन्म देती है।

Animal food for those,

Who will fight and die,

And Vegetable food for those,

Who will live and think.

मांस आहार उनके लिये है, जो लड़ेंगे एवं मरेंगे। शाकाहार उनके लिये है, जो जीवित रहेंगे एवं चिन्तन करेंगे।

हिन्दू धर्म में कहा गया है कि पहले धर्मात्मा शाकाहारी ब्राह्मण धर्म शक्ति से आकाश में उड़कर गमन करते थे, परन्तु ब्राह्मण लोगों के मांस खाने से धार्मिक शक्ति क्षीण हो गयी तब से ब्राह्मण लोग जमीन पर चलने लगे। इससे सिद्ध होता है कि मांस नहीं खाने से कितनी आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती है और खाने से कितनी क्षति होती है।

सम्पूर्ण जीवन में जो मांस को विष तुल्य त्याग कर देता है, वशिष्ठ भगवान् कहते हैं कि वह स्वर्ग सम्पत्ति को प्राप्त करता है। यथा—

यावज्जीवं च यो मांसं विषवत्परिवर्जयेत्।

वशिष्ठो भगवान्नाह प्राप्नुयात् स्वर्गं सम्पदम्॥

अन्यत्र भी कहा है—

रक्त मात्र प्रवाहण स्त्री निंदा जायते स्फुटं।

द्विधातुजं पुनर्मासं पवित्रं जायते कथम्॥

ऋतुवती के समय में अर्थात् रज निकलने से स्त्री अपवित्र हो जाती है और निश्चय से निन्दनीय होती है। परन्तु मांस रज, वीर्य से बनता है, तब मांस पवित्र कैसे हो सकता है? कदापि नहीं हो सकता क्योंकि इसमें तो दो अपवित्र वस्तुओं का मिश्रण है।

अहिंसा, हिंसा की परिभाषा

अप्रादुर्भावतः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।

तेशामेवोत्पत्तिहिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः। । । 44 पु. सि.

अपने शुद्धोपयोगरूप प्राण का घात रागादिक भावों से होता है, अतएव रागादिक भावों का अभाव ही अहिंसा है और शुद्धोपयोगरूप प्राणघात होने से उन्हीं रागादिक भावों का सद्भाव हिंसा है। परम अहिंसा धर्म प्रतिपादक जैन धर्म का यही रहस्य है।

यत्खलुकशाययोगात्प्राणानं द्रव्यभावरूपाणाम्।

व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा। । । 43

जिस पुरुष के मन में, वचन में, काय में क्रोधादिक कषाय प्रकट होते हैं, उसके शुद्धोपयोगरूप भाव प्राणों का घात तो पहले होता है, क्योंकि कषाय के प्रादुर्भाव से भावप्राण का व्यपरोपण होता है, यह प्रथम हिंसा है। पश्चात् यदि कषाय की तीव्रता से दीर्घ श्वासोच्छ्वास से, हस्त पादादिक से वह अपने अंग को कष्ट पहुँचाता है अथवा आत्मघात कर लेता है तो उसके द्रव्य प्राणों का व्यपरोपण होता है, यह दूसरी हिंसा है। फिर उसके कहे हुए मर्ममेदी कुवचनादिकों से या हास्यादि से लक्ष्य पुरुष के अंतर्गत में पीड़ा होकर उसके भावप्राणों का व्यपरोपण होता है— यह तीसरी हिंसा है और अन्त में इसकी तीव्र कषाय और प्रमाद से लक्ष्य पुरुष को जो शारीरिक अंग छेदन आदि पीड़ा पहुँचायी जाती है, सो

परद्रव्यप्राणव्यपरोपण होता है, यह चौथी हिंसा है। कषाय से अपने पर के भावप्राण व द्रव्यप्राण का घात करना यह हिंसा का लक्षण है।

आत्मपरिणामहिंसनहेतुत्वात्सर्वमेव हिंसेतत् ।

अनृतवचनादिकेवलमुद्वाहृतंशिष्य बोधाय ॥ 42 ॥

पाँचों पाप (हिंसा, अनृत, स्तेय, अब्रह्य, परिग्रह) हिंसा में ही गर्भित हैं, क्योंकि इन सब पापों से आत्मा के शुद्ध परिणामों का घात होता है, इस कारण पाँचों पाप हिंसा के ही भेद हैं।

वाक्यतनुभिर्यत्र न स्वन्नेऽपि प्रवर्तते ।

चरस्थिरादिग्मनां धातस्तदाद्यं व्रतमीरितम् ॥ 17 ॥ ज्ञानार्वण, पृ. 171

जिस व्रत में वचन, मन और शरीर से स्वज्ञ में भी त्रस-स्थावर प्राणियों का घात नहीं प्रवृत्त होता है वह आद्यव्रत-प्रथम अहिंसा-महाव्रत कहा गया है।

अकषाय भाव यत्र न स्वपरपीड़नम् ।

सा अहिंसा अमृतमाता सर्वे धर्मे प्रधानम् ॥ ।

जहाँ पर मानसिक दुर्विचार नहीं है और स्व-परपीड़न नहीं है वहाँ पर अहिंसा रूपी अमृतमाता निवास करती है। अहिंसा सम्पूर्ण धर्म में प्रधान धर्म है।

आत्म अहिंसक-परम अहिंसक

युक्ताचरणस्य सतो रागाद्यावेषमन्तरेणापि ।

न हि भवति जातु हिंसा प्राणव्यपरोपणादेव ॥ 45 ॥ पुरुशार्थसिद्धयुपाय

यदि किसी सज्जन पुरुष के सावधानता पूर्वक गमनादि करने में भी उसके शरीर सम्बन्ध से कोई जीव पीड़ित हो जावे, तो उसे हिंसा का दूषण कदापि नहीं लग सकता, क्योंकि उसके परिणाम कषाय युक्त नहीं थे। यही कारण है कि, “प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा” यह हिंसा का लक्षण कहा है। यदि केवल “प्राणव्यपरोपणं हिंसा” अर्थात् प्राणों को पीड़ा होना मात्र हीं हिंसा का लक्षण कहा होता तो ऐसे अवसर पर अतिव्याप्ति दूषण का सद्भाव होता, इसके सिवाय अव्याप्ति दूषण का भी प्रवेश हो जाता। जो आगे के श्लोक से प्रकट होगा।

मृते वा जीविते वा स्याज्जन्तुजाते प्रमादिनाम् ।

बन्ध एव न बन्धः स्यादिंहसया संवृतात्मनाम् ॥ 18 ॥ ज्ञानार्वण

जो प्राणि समूह के विषय में प्रमादयुक्त होते हैं—उनके रक्षण में असावधान होते हैं, उनके प्राणों का घात हो अथवा न भी हो, कर्मबन्ध होता ही है, किन्तु जिनकी आत्मा अहिंसा से संवृत है—जो प्राणी रक्षण में सदा सावधान हैं उनके कभी कर्मबन्ध नहीं होता है।

यदि मन में किसी को कष्ट देने की भावना है और किसी कारण वश कष्ट नहीं दे पाये तो भी हिंसा का पाप लगेगा ही। जैसे एक डाकू दूसरों को फायरिंग करके धन लूटना चाहता था परन्तु निशान चूकने के कारण सामने वाले व्यक्ति को निशान नहीं लगा और वह बच गया, तो भी न्यायाधीश उस चोर को दण्ड देगा, क्योंकि उसका मारने का इरादा था, और एक उदारहण लीजिए—एक धीवर मछली

पकड़ने के लिये पानी में जाल डालता है किन्तु दिनभर जाल बिछाकर बैठने पर भी मछली न पकड़े जाने पर भी हिंसा या अपराध का भागी होगा ही।

यदि अन्तरंग में कषाय भाव अर्थात् दूषित परिणाम नहीं हैं परन्तु हठात् किसी जीव का घात हो जाने पर भी हिंसा का या अपराध का भागी नहीं होगा जैसे—महामुनि चार हाथ जमीन नीचे देखते—देखते चलते समय कोई क्षुद्र प्राणी अकस्मात् पैर के नीचे दबकर मर जाने पर भी महामुनिराज दोष—अपराध के भागी नहीं हैं क्योंकि मरन में जीवों की विराधना मुझसे नहीं हो इस भाव के रहते हुए अपनी ओर से तो सावधानी (प्रयत्न) पूर्वक चल रहे थे अथवा जैसे एक कृषक खेत में कार्य करता है। हल जोतते समय अनेक जीवों का घात होता है तो भी उसे विशेष हिंसा का दोष नहीं लगेगा। किन्तु उद्योग जनित दोष लगेगा, क्योंकि उसके परिणाम जीव मारने का नहीं है किन्तु अनाज उत्पन्न करने का है अथवा दयालु प्रमाणिकता डॉक्टर रोगी को निरोगी बनाने के लिये ऑपरेशन करता है। दैव योग से और आयु पूर्ण होने पर रोगी का मरण होने के कारण भी डॉक्टर को हिंसा का दोष नहीं लगेगा क्योंकि डॉक्टर के परिणाम रोगी को बचाने के लिये होते हैं, न कि मारने के।

जब कषाय भाव उत्पन्न होता है उसी समय स्वात्मा की हिंसा हो जाती है भले वह स्वयं की या अन्य की द्रव्य हिंसा करें या न करें।

आत्मघात करना स्वकीय द्रव्य हिंसा एवं भाव हिंसा है, इसलिए आत्मघात करना सबसे बड़ी हिंसा है। दूषित मनोभाव से दूसरों को घात करने पर यदि कष्ट प्राप्त करने वाले जीव में कलुषित परिणाम नहीं हुए तो उसकी केवल द्रव्यहिंसा अर्थात् शरीर को ही कष्ट मिलेगा, लेकिन कष्ट देने वाले को द्रव्यहिंसा के साथ—साथ भाव हिंसा भी होगी।

कष्ट पाने वाला स्वर्ग—मोक्ष भी जा सकता है किन्तु कष्ट देने वाला महापाप बन्ध करके नरकादि दुर्गति को प्राप्त होगा। इसीलिये कष्ट सहना आत्मोन्तति के लिये अमृत तुल्य है और कष्ट देना विष तुल्य है। आचार्यों ने अहिंसा को अमृत माता तुल्य बतलाया है क्योंकि माता के समान अहिंसा प्रेमभाव से संतान की रक्षा करती है। अमृतपान करने से जैसे जरा—मरण व्याधि रूपी रोग कष्ट नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार अहिंसा से हिंसा, युद्ध, कलह, शिकार, परपीड़न आदि कष्ट नष्ट हो जाते हैं। प्रत्येक जीव जीना चाहता है, सुखी होना चाहता है एवं सुरक्षित रहना चाहता है। कोई भी मरने के लिये, कष्ट पाने के लिये नहीं चाहता है एवं असुरक्षित नहीं रहना चाहता है। एक जीव को सम्पूर्ण लोक की विभूति देकर भी उससे प्राण चाहेंगे तो भी वह प्राण नहीं देगा। इससे सिद्ध होता है कि एक जीव का मूल्य तीन लोक की विभूति से भी अधिक होता है। जो एक जीव की भी रक्षा करता है वह मानव तीन लोक की विभूति का दान देता है। इसीलिये भगवान् महावीर ने बताया कि सर्व धर्म का मूल आधार अहिंसा है। अहिंसा को दृढ़, निर्मल एवं वृद्धि करने के लिये अन्य धर्म परिचारक हैं।

"परवहा आद वहा होई"

परवध आत्मा वध ही है जो दूसरों को कष्ट देता है वह स्वयं को ही कष्ट देता है।

जीव जिणवर जे मुणहि जिणवर जीव मुणेहि।
ते सम भाव परटिरया लहु णिव्वाण लहेहि॥

जो प्रत्येक जीव को जिनेन्द्र भगवान् के समान मानता है एवं जिनेन्द्र भगवान् को जीव के बराबर मानता है वह समभाव को प्राप्त होकर शीघ्र निर्वाण को प्राप्त हो जाता है।

द्रव्यतः सामान्य जीव एवं अरिहन्त एवं सिद्ध भगवान् में कोई भेद नहीं है। क्योंकि "सब्वेसुद्धा हु सुद्धण्या।" शुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टि से समस्त जीव सिद्ध सदृश्य है। इसलिए जो कोई भी जीव को कष्ट देता है वह साक्षात् परमात्मा को कष्ट देता है, जो जीवों की सेवा करता है वह जिन की सेवा करता है। इसलिये ईसामसीह ने बताया था कि मानव सेवा ही भगवान् सेवा है।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मैं मैत्री की दृष्टि से सब प्राणियों को देखूँ। यजुर्वेद
इन्द्रियाणाम् निरोधेन रागद्वेष क्षयेण च।

अहिंसत्वं च भूतानाममृतत्वाय कल्पते॥। मनुस्मृति
दुष्ट इन्द्रियों की दुष्प्रवृत्ति के निरोध से, राग-द्वेष के क्षय से और अहिंसा तत्त्व से जीवों को अमृततत्त्व की प्राप्ति होती है।

अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परोदमः।
अहिंसा परमं दानं अहिंसा परमं तपः॥।

अहिंसा परमो यज्ञस्तथाऽहिंसा परमं फलं।

अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम्॥। महाभारत

अहिंसा ही परम धर्म है, अहिंसा ही परम दया है, अहिंसा ही परम दान है, अहिंसा ही परम तप है। अहिंसा परम यज्ञ है, अहिंसा परम फल है, अहिंसा परम मित्र है, अहिंसा परम सुख है।

हिंसा के 4 भेद – (1) आरम्भी, (2) उद्योगी, (3) विरोधी, (4) संकल्पी।
आरम्भी हिंसा – गृहस्थ सम्बन्धी कार्य में जो हिंसा होती है उसको आरम्भी हिंसा कहते हैं।

उद्योगी हिंसा – कृषि, वाणिज्य आदि कार्य में जो हिंसा होती है उसे उद्योगी हिंसा कहते हैं।

विरोधी हिंसा – आत्म रक्षा के लिए, देश रक्षा के लिए, धर्म रक्षा के लिए, शरणागत की रक्षा के लिए, असहाय स्त्री एवं बालक की रक्षा के लिए, धर्मनीति के अनुसार विरोधियों के साथ युद्ध करने से जो हिंसा होती है उसको विरोधी हिंसा कहते हैं। संकल्पी हिंसा – दूषित भावना सहित दूसरे जीवों को मारने का भाव उत्पन्न होने को संकल्पी हिंसा कहते हैं।

एक आदर्श गृहस्थ नागरिक को हिंसा नहीं करने की भावना होने पर भी आरम्भ, व्यापारादि करना पड़ता है एवं देश आदि के लिए युद्ध भी करना पड़ता है। इसीलिए वह उपरोक्त तीनों हिंसा – आरम्भी, उद्योगी, विरोधी हिंसा से बच नहीं सकता है परन्तु संकल्पी हिंसा का त्याग करना उसके लिए नितान्त आवश्यक है।

सत्ता, धन-सम्पत्ति, ख्याति-कीर्ति या द्वेष आदि से जो एक देश दूसरे पर आक्रमण करता है वह संकल्पी हिंसा है। मांस के लिए मत्स्य पालन करना, मुर्गी पालन करना, बूचड़ खाना खोलकर जीवों का घात करना संकल्पी हिंसा है, रेशमी वस्त्र के लिए, रेशमी कीड़ों को जिन्दा उबालना संकल्पी हिंसा में ही गर्भित है।

अहिंसा यदि अमृत है तो हिंसा विष है। अहिंसा प्रकाश है तो हिंसा अंधकार है। अहिंसा से ही अभिवृद्धि, प्रेम, विश्वमैत्री संगठन हो सकता है। केवल नारेबाजी, नेतागिरी, आक्रमण प्रवृत्ति से, अनीति, अत्याचार से, शोषण नीति से शांति स्थापित नहीं हो सकती है। जैसे-मनुष्य को जिन्दा रहने के लिए अधिकार है उसी प्रकार पशु आदि प्राणियों को भी जिंदा रहने का अधिकार है। भगवान् महावीर ने कहा था (Live and Let Live) "जीयो और जीने दो" जीने का जैसा तुम्हारा अधिकार है उसी प्रकार दूसरों को जीने देना तुम्हारा कर्तव्य है। इसीलिये प्रत्येक मानव एवं राष्ट्र के कर्णधारों को चाहिये कि मांस के लिए या अन्य किसी स्वार्थ की सिद्धि के लिए किसी भी प्रकार की हिंसा न करें।

स्वामी समन्तभद्र ने स्वयंभू स्त्रोत में कहा है—

"अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमम्"।

अहिंसा में, अहिंसा का पालन करने वालों के लिये सम्पूर्ण जगत् परम ब्रह्ममय दिखाई देता है। कौटिल्य चाणक्य ने बताया—

"त्यजेत् धर्म दया हीनं। दयाहीन धर्म का त्याग करो"।

इसके साथ उन्होंने बताया है कि जो दयाहीन धर्म का त्याग नहीं करता है उसको सुख-शान्ति-वैभव-मोक्ष-स्वर्ग आदि स्वयमेव ही छोड़कर चले जाते हैं। लिंगायत धर्म के सर्वज्ञ कवि ने कहा— मैं अहिंसामय जैन धर्म को सिर पर धारण करता हूँ किन्तु जो हिंसामय धर्म है उसे चूल्हे में डालकर जला दो।

हिंसा करने वाला परभव में अपघात से मरता है। नरक तिर्यक गति में जन्म लेता है। यदि कदाचित् मनुष्य जाति में जन्म लिया तो वहाँ पर गर्भ में ही मरण को प्राप्त हो जाता है या अल्पायु में रोग या दुर्घटना या शस्त्र प्रहार से मरता है। यदि जिन्दा भी रहा तो रोग से, धनाभाव से, मानहानि से, अंग-उपांग के छेदन-भेदन से, अनेक शारीरिक, मानसिक दुःखों को सहन करता है।

सर्व व्रताधार अहिंसा का माहात्म्य

सत्याद्युत्तरनिःशेष यमजात निबन्धम्।

शोलैश्वर्याद्यधिष्ठानहिंसाख्यं महाव्रतम्। १६ ज्ञा.अ. ८-१७।

अहिंसा नाम का महाव्रत आगे के जो सत्य महाव्रतादिरूप समस्त व्रतों का समूह है, उसका कारण है— उन सबकी स्थिति इस अहिंसा महाव्रत पर आश्रित है। साथ ही वह अठारह हजार शीलों के स्वामित्व आदि का भी आधार है— उसके बिना इन शीलों के स्वामित्व आदि की सम्भावना नहीं है।

एतत्समयसर्वमेतत्सद्वान्तं जीवितम् ।

यज्जनुजातरक्षार्थं भावशुद्ध्या दृढं व्रतम् ॥२९

जो जीवों की रक्षा के लिए परिणामों की निर्मलतापूर्वक दृढ़ता से व्रत किया जाता है—प्राणिहिंसादि का परित्याग किया जाता है—यह सब मतों का सार है और यही आगम का प्राण है।

श्रूयते सर्वशस्त्रेषु सर्वेषु समयेषु च ।

अहिंसा लक्षणो धर्मस्तद्विपक्षश्च पातकम् ॥३०

यह सब ही शास्त्रों में और सब ही मतों में सुना जाता है कि धर्म का लक्षण अहिंसा है इसके विपरीत जो प्राणियों का घात किया जाता है वह पाप है ॥

अहिंसैव जगन्मातहिंसैवानन्दपद्धतिः ।

अहिंसैव गतिः साध्वी श्रीरहिंसैव शाश्वती ॥३१

अहिंसा ही विश्व की माता है अहिंसा ही आनन्द (सुख) का मार्ग है, अहिंसा ही उत्तम गति है और अहिंसा ही अविनश्वर लक्ष्मी है ॥

अहिंसैव शिव सूते दत्ते च त्रिदिवश्रियम् ।

अहिंसैव हितं कुर्याद् व्यसनानि निरस्यति ॥३२

अहिंसा ही स्वर्ग की लक्ष्मी को देती है और मोक्ष को उत्पन्न करती है तथा वहीं अहिंसा व्यसनों को—सब प्रकार की आपत्तियों को नष्ट करके प्राणी का हित करती है।

सप्तद्वीपवती धात्री कुलाचल समन्विता ।

नैकप्राणिवधोत्पन्नं दत्ता दोषं व्यपोहति ॥३३ पृ.१०१ज्ञा.

दान में दी गयी कुलाचलों से संयुक्त सात द्वीपवाली पृथ्वी एक प्राणी के घात से उत्पन्न हुए दोष को नहीं नष्ट करती है। अभिप्राय यह है कि एक प्राणी के घात से इतना भारी पाप होता है कि जो सात द्वीपों वाली समस्त पृथ्वी के दान देने से भी नष्ट नहीं होता है।

सकलजलधिवेलावारिसीमां धरित्रीं नगरनगसमग्रां स्वर्णरत्नादिपूर्णाम् ।

यदिमरणनिमित्ते कोऽपि दद्यात् कथंचित् तदपि न मनुजानां जीवितत्याग बुद्धिः ॥३४

जिसकी सीमा समस्त समुद्र का किनारा है, जो बहुत से नगरों एवं पर्वतों से सहित है तथा जो सुवर्ण व रत्नों आदि से परिपूर्ण है, ऐसी विशाल पृथ्वी को भी यदि कोई मरने के निमित्त देता है तो भी मनुष्यों के जीवन देने की बुद्धि या मरने की इच्छा—किसी प्रकार से भी नहीं होती है। अभिप्राय यह है कि मनुष्यों को विशाल साम्राज्य आदि की अपेक्षा अपना जीवन ही अधिक प्रिय होता है।

परमाणोः परं नाल्पं न महद् गगनात्परम् ।

यथा किंचित्तथा धर्मो नाहिंसालक्षणात्परः ॥४०

जिस प्रकार परमाणु से दूसरा कोई छोटा नहीं है तथा आकाश से दूसरा कोई बड़ा नहीं है उसी प्रकार हिंसा से निकृष्ट दूसरा कोई पाप नहीं है तथा अहिंसा से उत्कृष्ट कोई धर्म नहीं है—सब धर्मों में अहिंसा ही उत्कृष्ट है।

तपः श्रुतयमज्ञानध्यानदानादि कर्मणाम् ।

सत्यशील व्रतादीनामहिंसा जननी माता ॥४१

वह अहिंसा, तप, श्रुत, संयम, ज्ञानध्यान और दान आदि क्रियाओं की तथा सत्य, शील और व्रतादि की जननी मानी गयी है। अभिप्राय यह है कि—जिस प्रकार माता सन्तान को पुष्ट करती है उसी प्रकार अहिंसा उपर्युक्त तप श्रुतादि को पुष्ट करती है। उस अहिंसा के बिना वे सब व्यर्थ रहते हैं।

करुणार्द्धं च विज्ञानवासिं यस्य मानसम् ।

इन्द्रियार्थेशु भिःसंग तस्य सिद्धं समीहितत् ॥४२

जिसका मन दया से भीगा हुआ, विज्ञान (विवेक) से संस्कृत, और इन्द्रिय विषयों की मूर्झा से रहित (निर्ममत्व) हो चुका है उसका अभीष्ट सिद्ध हुआ ही समझना चाहिए।

अहिंसैकापि यत्सौख्यं कल्याणमथवा शिवम् ।

दत्ते तद्विहिनां नायं तपःश्रुतयमोत्करः ॥४६

एक ही अहिंसा प्राणियों के लिए जिस सुख को, कल्याण को अथवा मोक्ष सुख को देती है उसे यह तप, श्रुत और संयम का समुदाय भी नहीं दे सकता है। जन्मोग्रन्थमभीतानामहिंसैवौशीशी परा ।

तथामरपुरीं गन्तुं पाथेयं पथि पुष्कलम् ॥४८

संसार रूप भ्रम—रोग से भय को प्राप्त हुए प्राणियों के लिए उत्कृष्ट औषधि अहिंसा ही है तथा वह अहिंसा अमरपुरी को—स्वर्ग अथवा मोक्ष को—जाने के लिए प्रचुर पाथेय—मार्ग में खाने के योग्य भोजन है।

विद्ध्यहिंसैव भूतानां मातेव हितकारिणी ।

तथा रमयितुं कान्ता विनेतुं च सरस्वती ॥५१

प्राणियों का माता के समान हित करने वाली अहिंसा ही है। उस अहिंसा में रमण करने के लिए स्त्री तथा शिक्षा देने के लिए सरस्वती समझो।

जायन्ते भूतयः पुंसां याः कृपाकान्त चेतसाम् ।

चिरेणापि न ता वर्कुं शक्ता देन्यपि भारती ॥५२

जिनका चित्त दयालु है उन पुरुषों की जो सम्पदा होती है उनका वर्णन सरस्वती देवी भी बहुत काल पर्यन्त करे तो भी उससे नहीं हो सकता, फिर अन्य से तो किया ही कैसे जा सकता है।

किं न तप्तं तपस्तेन किं न दत्तं महात्मना ।

वित्तीर्णमध्यं येन प्रीतिमालम्य देहिनाम् ॥५३

जिस महापुरुष ने जीवों को आश्रय देकर अभयदान दिया उस महात्मा ने कौन सा तप नहीं किया और कौन सा दान नहीं दिया अर्थात् उस महापुरुष ने समस्त तप, दान दिया क्योंकि अभयदान में सब तप, दान आ जाते हैं।

यथा यथा ह्वदि स्थैर्यं करोति करुणा नृणाम् ।

तथा तथा विवेकग्रीः परां प्रीतिं प्रकाशते ॥५४

पुरुषों के हृदय में जैसे करुणाभाव स्थिरता को प्राप्त करता है तैसे—तैसे विवेकरूपी लक्ष्मी उससे परम प्रीति प्रकट करती रहती है। भावार्थ—करुणा(दया) विवेक को बढ़ाती है।

अन्ययोगव्यवच्छेदादहिंसा श्रीजिनागमे ।

पैरैश्च योगमात्रेण कीर्तिता सा यदृच्छ्या ॥ ५६ ॥

जिनेन्द्र भगवान् के मार्ग में तो अहिंसा अन्ययोगव्यवच्छेद से कही है अर्थात् अन्यमतों में ऐसी अहिंसा का योग नहीं है । इस जिनमत में तो हिंसा का सर्वथा निषेध ही है और अन्य मतियों ने जो अहिंसा कही है सो योगमात्र से ही कही है अर्थात् कहीं अहिंसा कही है और कहीं हिंसा का पोषण किया है । सो स्वेच्छापूर्वक उन्मत्त की भाँति कही है । जिनागम में हिंसा का सर्वथा निषेध है किन्तु अन्यमतियों ने पागल के जैसे कहीं तो हिंसा का निषेध किया है और कहीं उसका पोषण किया है ।

तत्रास्ति जीवलोके जिनेन्द्रदेवेन्द्र चक्रकल्याणम् ।

यत्प्राप्नुवन्ति मनुजा न जीवरक्षानु रागेण ॥ ५७ ॥

इस जीवलोक में (जगत् में) मनुष्य जीव-रक्षा के अनुराग से समस्त कल्याणरूप पद को ही प्राप्त होते हैं ऐसा कोई भी तीर्थकर देवेन्द्र चक्रवर्तित्वरूप कल्याणपद लोक में नहीं है जो दयावान् नहीं पावें अर्थात् अहिंसा (दया) सर्वोत्तम पद की देने वाली है ।।

ज्योतियश्वकस्य चन्द्रो हरिमृतभुजां चण्डरोचिर्गहाणाम् ।

कल्पांगः पादपानां सलिलनिधिरपां स्वर्णशैलो गिरीणाम् ।

देवः श्रीवीतरागस्त्रिदशमुनिगणस्यात्र नायो यथाऽयम् ।

तद्वच्छीलब्रतानां शमयमतपसां विद्ययहिंसां प्रधानाम् ॥ ५९ ॥

हे भव्य जीव! जिस प्रकार ज्योतिषचक्रों में प्रधान स्वामी चन्द्रमा है तथा देवों में इन्द्र, ग्रहों में सूर्य, वृक्षों में कल्पवृक्ष, जलाशयों में समुद्र, पर्वतों में मेरु और देवों में मुनियों के नाथ (स्वामी) श्री वीतराग देव प्रधान हैं उसी प्रकार शील और ब्रतों में तथा शमभावयम (महाब्रत) और तपों में अहिंसा को प्रधान जानें। ऐसे अहिंसा महाब्रत का वर्णन किया गया ।।

न ब्राह्मणस्तेतद किञ्चित् सेयो सदा निसेधो मनसो पियेहि ।

यतो यतो हिंसमनो निवर्तति ततो ततो सम्मति एव दुःखं ॥ १८ ॥

ब्राह्मण के लिए यह बात कम कल्याणकारी नहीं है, जो वह प्रिय (पदार्थों) से मन हटा लेता है, जहाँ-जहाँ से मन हिंसा से मुड़ता है, वहाँ-वहाँ से दुःख (अवश्य) ही शान्त हो जाता है ।

अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुनो पदं ।

अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता ॥ १ ॥

प्रमाद न करना अमृत पद का साधक है और प्रमाद करना मृत्युपद का। अप्रमादी नहीं मरते किन्तु प्रमादी तो मरे तुल्य ही हैं।

एतं विसेसतो जत्वा अप्पमादम्हि पण्डिता ।

अप्पमादे पमोदन्ति अरियानं गोचरे रता ॥ १२ ॥ धम्मपद

पण्डित लोग अप्रमाद के विषय में इसे अच्छी तरह जान, बुद्ध द्वारा उपदिष्ट आचरण में रत हों, अप्रमाद में प्रमुदित होते हैं।

अध्याय-३

अहिंसा के सार्थक 60 नाम

तथ पठमं अहिंसा जा सा सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स भवति दीवो ताणं सरणं गती पइट्ठा १ निवाणं, २ निवुई, ३ समाही, ४ सती, ५ कित्ती, ६ कंती, ७ रती य, ८ विरती य, ९ सुयंग, १० तित्ती, ११ दया, १२ विमुत्ती, १३ खंती, १४ समताशहणा, १५ महंती, १६ बोही, १७ बुद्धि, १८ घिती, १९ समिद्धी, २० रिद्धि, २१ विद्धी, २२ ठिती, २३ पुट्ठी, २४ नंदा, २५ भद्रा, २६ विसुद्धी, २७ लद्धी, २८ विसिट्ठदिट्ठी, २९ कल्लाणं, ३० मंगलं, ३१ पमाओ, ३२ विभूति, ३३ रक्खा, ३४ सिद्धावासो, ३५ अणासवो, ३६ केवलीणठाणं, ३७ सिंवं, ३८ समिई, ३९ सील, ४० संजमोति य, ४१ सीलपरिधरो, ४२ संवरो य, ४३ गुत्ती, ४४ ववसाओ, ४५ उस्सओ, ४६ जत्रो, ४७ आयतणं, ४८ जयणं, ४९ अप्पमातो, ५० अस्सासो, ५१ वीसासो, ५२ अमओ, ५३ सव्वस्स वि अमाधाओ, ५४ चोक्ख, ५५ पवित्रा, ५६ सूती, ५७ पूर्या, ५८ विमल, ५९ पमासा य, ६० निम्मलयरति, एवमादीणि नियमगुणनिम्मियाइं पञ्जवनामाणि होति अहिंसाए भगवतीए ॥ १ ॥

प्रश्नव्याकरण सूत्र अ० ६.

उन पाँचों संवरों में से प्रथम संवर अहिंसा है। यह पूर्वोक्त अहिंसा देवों, मनुष्यों और असुरों के सहित सम्पूर्ण लोक के लिये आश्रयदाता द्वीप की तरह है अथवा अज्ञानान्धकार का नाश करने वाला दीपक है। यह सबकी रक्षा करने वाली, शरण देने वाली और कल्याणभिलाषियों के लिये प्राप्त करने योग्य है। यह सब गुणों और सुखों का प्रतिष्ठान है। यह निर्वाण का कारण है, आत्मिक स्वस्थता का कारण है, समास समता की जननी है, आत्मिक शक्ति का कारण है अथवा शांति रूप है। यह कीर्ति का कारण है और आत्मिक और शारीरिक कान्ति बढ़ाने वाली है। यह रति (प्रीति) का कारण है और पापों से विरति कराने वाली है। श्रुतज्ञान ही इसकी उत्पत्ति का कारण है। यह तृप्ति का कारण और जीवदया रूप है, यह बन्धनों से मुक्ति दिलाती है, क्षान्ति रूप है। यह सम्यक्-दर्शन की आराधना रूप है अथवा सम्यक् प्रतीतिरूप है। यह सब ब्रतों में महान् प्रधान है। यह केवली प्ररूपित धर्म की प्राप्ति कराने वाली है और बुद्धि को सफल बनाने वाली है। यह धृति-धैर्य पैदा करती है, आत्मिक समृद्धि तथा ऋद्धि का कारण है, यह पुण्य वृद्धि का कारण है, पाप को घटाकर पुण्य को पुष्ट करने वाली है और आनन्ददायिनी है। यह स्वपर-कल्याणकारिणी है, पापक्षय कर आत्मा की विशुद्धि करने वाली है, केवल ज्ञानादि लक्ष्मीयाँ प्राप्त कराने वाली है, अनेकान्तवाद से विशिष्ट दृष्टि रूप है, कल्याण, मंगल और प्रमोद का कारण है। यह ऐश्वर्य प्राप्ति में निमित्त है, जीवों की रक्षा करने वाली तथा सिद्धों परमात्माओं के पास निवास कराने वाली, मुक्ति प्राप्त कराने वाली है। यह कर्म बंध रोकने वाली होने से अनाश्रवरूप है, केवलज्ञानियों का स्थान है, और शिवनिरूपद्रवरूप है। यह सम्यक्-प्रवृत्ति (समिति) रूप निराकुलता-समाधान-रूप और संयम रूप है तथा शील-सदाचार का पीहर-पितृगृह है-संवरमयी है। यह मन-वचन-काया की दुष्प्रवृत्तियों को रोकने वाली है, विशिष्ट व्यवसाय निश्चय का कारण और भावों की उत्तरि रूप है। यह भावयज्ञ रूप या भावपूजारूप है, गुणों का आयतन-आश्रम है और यतनारूप है तथा अभयदानरूप है। यह अप्रमाद

रूप है, प्राणियों के लिये आश्वासन रूप, विश्वास का कारण और अभय पैदा करने वाली या अभयदात्री है। यह समस्त प्राणियों के लिये अमारिधोषणारूप है। यह स्वच्छ है, पवित्र है, और पवित्रता का कारण है, और भावों की निर्मलतारूप भाव पूजा का कारण है। यह आत्मा को विमल बनाने वाली, तेज से प्रकाशित करने वाली और जीवों को कर्मरजमल से रहित—अत्यन्त निर्मल करने वाली है। इस भगवती अहिंसा के ये और ऐसे ही अन्य निजगुण से निष्पत्र सार्थक पर्यायवाचक नाम हैं।

सर्वजीवों का आधार अहिंसा

एसा सा भगवती अहिंसा जा सा भीयाण विव सरणं पक्खीणं पिव गमणं, तिसियाणं पिव सलिलं, खुहियाणं पिव असणं, सुमछमज्जे व पोतवहणं, चउप्पयाणं व आसमपयं, दुहृष्टियाणं च ओसहिबलं, अडीमज्जे व सत्त्वगमणं, एतो विसिद्धुतरिका अहिंसा जा सा पुढवि—जल अगणि—मारूय—वणरसइ—बीजहरित—जलचर—थलचर, खहचर, तसयावर—सख्खूयखेमकरो। यह वह भगवती अहिंसा है, जिसे असीम (अनन्त) ज्ञान और दर्शन के धारक, शील—गुण विनय तप और संयम के नायक मार्ग दर्शक सारे विश्व के प्राणियों के प्रति वत्सल, तीनों लोकों में पूज्य जिनचन्द्र तीर्थकरों ने (अनन्त ज्ञान, दर्शन द्वारा) भली—भाँति देखा है। विशिष्ट अवधिज्ञानियों ने इसे विशेष रूप से जाना है; ऋजुमति मनः पर्यायज्ञानियों ने इसे विशेष रूप से देख—परख लिया है, विपुलमतिमनः पर्यायज्ञानियों ने इसे विशेष रूप से जान लिया है। चतुर्दशपूर्वधारियों ने इसका अध्ययन कर लिया है; वैक्रियलघ्विधारकों ने इसका आजीवन पालन किया है। इसी प्रकार मतिज्ञानियों, श्रुतज्ञानियों, अवधिज्ञानियों, मनः पर्यायज्ञानियों और केवल ज्ञानियों ने इसकी आराधना की है। विशिष्ट तप के द्वारा हाथ आदि से छूने मात्र से औषधि रूप बन जाने की आमशौषधिलघ्वि पाये हुये ऋषियों ने थूक के औषधि रूप बन जाने की खेलौषधिलघ्वि पाये हुये मुनियों ने, जिनके शरीर का पसीना, मैल आदि की औषधि रूप हो गया है, ऐसी जल्लौषधि—लघ्विधारियों ने, जिनका मल—मूत्र ही औषधि रूप बन गया है, ऐसी विप्रौषधि नामक लघ्वि प्राप्त मुनियों ने, शरीर के समस्त अवयव ही जिनके औषधिरूप बने गये हैं; ऐसी सर्वोषधिलघ्वि पाये हुये महापुरुषों ने इसकी साधना की है। मूल अर्थ को जानकर सारा का सारा विशेष अर्थ जान लेने वाली बीज बुद्धिरूप लघ्वि के धारकों ने, एक बार जान लेने पर सदा याद रखने वाली कोष्ठ बुद्धि नामक लघ्वि से युक्त मुनियों ने, एक पद से सैकड़ों पदों को जान लेने वाली पदानुसारिणी लघ्वि सम्पत्र पुरुषों ने, शरीर के प्रत्येक अवयव से चारों ओर से शब्दों को सुनने की शक्ति अथवा शब्द रस आदि विषयों को एक साथ ग्रहण करने की इन्द्रियों की शक्ति या एक साथ उच्चारण किये हुये अनेक प्रकार के शब्दों को भिन्न-2 रूप से जानने की शक्तिशाली संभिन्न-स्रोत लघ्वि से युक्त पुरुषों ने इसका पालन किया है। श्रुतज्ञान के धारकों ने, मनोबलियों ने, वचनबलियों ने, कायबलियों से युक्त पुरुषों ने, ज्ञानबलियों ने, दर्शन बलसम्पन्न पुरुषों ने, दृढ़चरित्रबल से युक्त पुरुषों ने इसका भली—भाँति आचरण किया है। दूध के समान मधुर वचन वर्षा करने वाली क्षीरखावी लघ्वि के धारकों ने, मधु के समान मधुर वचन शक्तिरूप मधुखावी लघ्वि से युक्त पुरुषों ने, घृत के समान स्निग्ध वाक्य बोलने वाली

सर्पिखावी लघ्वि पाये हुये मुनियों ने, जिस लघ्वि के प्रभाव से भोजन की सामग्री कम न हो, ऐसी 'अक्षीणमहानस' नामक लघ्वि के धनी मुनियों ने, इसका सम्यक् अनुष्ठान किया है। आकाश में गमन करने की विद्याचरण लघ्वि के धारक चारण मुनियों ने अथवा जंघाचरणलघ्वि वाले मुनियों ने, हर प्रकार के प्रश्नों का उत्तर दे सकने को अंगुष्ठादि विद्या सिद्ध किये हुये विद्याधर मुनियों ने, एक उपवास से लेकर 6 महीने तक की तपस्या करने वाले तपस्वियों ने इसकी साधना की है। भोजन बनाने से निकाले हुये भोजन को ही ग्रहण करने के नियम वालों ने, भोजन पकाने के पात्र से दूसरे पात्र में निकालकर रखे हुये भोजन को ही ग्रहण करने के अभिग्रह वालों ने, गृहस्थ के भोजन कर लेने के बाद शेष रहे भोजन को ही लेने के अभिग्रह वालों ने, बचे हुये तुच्छ आहार को ही लेने की प्रतिज्ञा वालों ने, रुखा—सूखा आहार ही ग्रहण करने के संकल्प धारियों ने, रुखा—सूखा, ठण्डा, बचा—खुचा जैसा भी आहार मिल जाय उसे अग्लान—दीनता रहित भाव से ग्रहण करने के अभिग्रह वालों ने, अथवा जब आहार किये बिना ग्लानि होने लगे, तभी आहार लेने के अभिग्रहधारियों ने, मौन धारण करके भिक्षा लेने के संकल्पकर्ताओं ने, बिना किसी भेदभाव से उच्च, नीच, मध्यम सभी घरों से भिक्षा ग्रहण करने की चर्या वालों ने, आटे आदि से अलिप्त हाथ या बर्तन से ही आहार लेने की प्रतिज्ञा वालों ने, जो भोजनादि देय द्रव्य हैं, उसी से हाथ या पात्र भरे हो तो आहार लेने के नियम वालों ने, दाता के निकटवर्ती आहारादि को ही ग्रहण करने के अभिग्रह वालों ने, शंका आदि भिक्षा के 42 दोषों से रहित आहार आदि को ही लेने की प्रतिज्ञा वालों ने, आहारादि वस्तुओं की दति की संख्या निश्चित करके आहार लेने वालों ने, अपने पास के दृश्यमान स्थान से लाई हुई वस्तु को ही ग्रहण करने के संकल्प वालों ने, पहले न देखी हुई—अदृष्ट वस्तु को ही लेने की प्रतिज्ञा वालों ने, 'हे स्वप्निन् ! अमुक पदार्थ आपके लिये कल्पनीय ग्राह्य है?' इस प्रकार पूछकर आहारादि देने वाले से ही आहारादि लेने के नियम वालों ने, सदा आयंबिल तप करने वालों ने, प्रतिदिन सूर्योदय से दोपहर तक आहार लेने का त्याग करने वालों ने, प्रतिदिन एकाशन करने वालों ने, धी, दूध वगैरह विकृतिजनक (विग्रह) पदार्थों के त्याग करने वालों ने, खण्डित हुये मोदक आदि को ही ग्रहण करने की प्रतिज्ञा वालों ने, परिमित भोजन ग्रहण करने की प्रतिज्ञा वालों ने, गृहस्थ के खाने के बाद बचे हुये भोजन को ही सेवन करने के नियम वालों ने, तुच्छ व ठण्डा भोजन ही सेवन करने के नियम वालों ने, हींग आदि से छाँका हुआ न हो, ऐसे असंस्कृत भोजन का ही सेवन करने वालों ने, रसहीन आहार को ही लेने के नियम वालों ने, रुखा—सूखा आहार ही कर लेने की प्रतिज्ञा वालों ने, सारहीन या अत्यल्प आहार करने की ही प्रतिज्ञा वालों ने, गृहस्थ के भोजन से बचे हुये भोजन पर ही जीवनभर निर्वाह कर लेने के अभिग्रह वालों ने, रसहीन भोजन से ही सदा जीवन बसर कर लेने वालों ने, रुखे आहार पर ही सारा जीवन बिता देने वालों ने, सारहीन या तुच्छ स्वल्प आहार में ही आजीवन सन्तुष्ट रहने के नियम वालों ने, आहार मिले या न मिले, हर स्थिति में क्रोधादि कषायों से दूर रहकर शान्तभाव से जीने वालों ने, हर अवस्था में अन्तर से भी शान्त रहकर जीवन बसर करने वालों ने, निर्दोष (42 दोष रहित) आहार आदि से ही जीवन निर्वाह करने वालों ने, दूध, शहद या मीठा, घृत

आदि का आजीवन त्याग करने वालों ने, किसी भी हालत में मद्य और मांस का सेवन न करने वालों ने, इसका भली-भाँति आचरण किया है। कायोत्सर्ग में एक स्थान पर स्थित रहने के अभिग्रह वालों ने, एक स्थान पर उत्कटिकासन धारण करके रहने वालों ने, वीरासन धारण करने वालों ने, निषधासन लगाने वालों ने, दण्डासन लगाने वालों ने, टेढ़े-मेढ़े लकड़ की तरह सिर और पैर की ऐड़ी पृथ्वी पर टिकाकर शेष भाग ऊपर उठाये रखकर शयन करने वालों ने, धूप में आतापना लेने वालों ने, वस्त्र न ओढ़कर शरीर केश खुला रखने वालों ने, थूक एवं कफ आदि को भूमि पर नहीं गिराने वालों ने, खाज न खुजलाने वालों ने, शिर तथा दाढ़ी-मूँछ के बाल, रोम और नखों के संस्कार के प्रति उपेक्षा भाव रखने वालों ने, शरीर पर तेल की मालिश, प्रक्षालन आदि सभी प्रकार के संस्कारों से विरक्त महापुरुषों ने शास्त्रज्ञ पुरुषों के द्वारा विस्तृत तत्त्वज्ञान को जानने वाली बुद्धि के धनी पुरुषों ने इसका समीक्षीय रूप से पालन किया है। इसके अतिरिक्त जो क्षोभरहित, स्थिर अवग्रहादि मतिज्ञान तथा औत्पातिकी आदि बुद्धियों से युक्त एवं दाढ़ में विष वाले सर्प के उग्र विष के समान अपने तप से तेज वाले ऋषियों ने, वस्तु तत्व के निश्चय और पुरुषार्थ दोनों में जिनकी बुद्धि पूरा काम करती है, उन्होंने एवं नित्य स्वाध्याय तथा चित्तनिरोध रूप ध्यान में रत एवं धर्म ध्यान में निरन्तर चित्त को अनुबद्ध-संलग्न रखने वालों ने, पाँच महाव्रत रूप चरित्र से युक्त तथा पाँच समितियों में सम्यक् प्रवृत्ति करने वालों ने, पापों को शांत करने वालों ने, छह काया रूप सारे जगत् के वत्सल एवं सदा प्रमाद रहित इन पूर्वोक्त गुणयुक्त पुरुषों ने तथा दूसरे गुणों से भी युक्त महात्माओं ने इस पूर्वोक्त भगवती अहिंसा का सतत पालन किया है।

अहिंसा परमो धर्मो धर्मेषु श्रेष्ठसम्मतिः ।

हिंसा च सर्वापानां जननी लोकविश्रुता ॥ 1 ॥

अहिंसा सब धर्मों में श्रेष्ठ है। हिंसा के पीछे सब प्रकार के पाप लगे रहते हैं।

इदं हि धर्मं सर्वस्वं शास्त्राणां वचने द्वयम् ।

क्षुधार्तेन समं भुक्तिः प्राणिनाजैव रक्षणम् ॥ 2 ॥

क्षुधावाधितों के साथ अपनी रोटी बौंट कर खाना और हिंसा से दूर रहना, यह सब धर्म उपदेष्टाओं के समस्त उपदेशों में श्रेष्ठतम उपदेश है।

अहिंसा प्रथमो धर्मं सर्वेषामिति सम्मतिः ।

ऋषभिर्बहुद्या गीतं सूनृतं तदनन्तरम् ॥ 3 ॥

अहिंसा सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है। सच्चाई की श्रेणी उसके पश्चात् है।

अयमेव शुभो मार्गो यस्मिन्नेवं विचारणा ।

जीवः कोऽपि न हन्तव्यः क्षुद्रात्क्षुद्रतरोऽपि सन् ॥ 4 ॥

सन्मार्ग कौन-सा है? यही वही मार्ग है जिसमें छोटे-से-छोटे जीव की रक्षा का पूरा ध्यान रखा जावे।

हिंसा दूरात् समुत्सृज्य येनाहिंसा समादृता

उदात्तः स हि विज्ञेयः पापत्यगिषु वै ध्रुवम् ॥ 5 ॥

जिन लोगों ने इस पापमय सांसारिक जीवन को त्याग दिया है, उन सब में मुख्य वह पुरुष है जो हिंसा के पाप से डर कर अहिंसा मार्ग का अनुसरण करता है।

अहिंसाव्रतसम्पन्नो धन्योऽस्ति करुणामयः ।

सर्वग्रासीयमोऽप्यस्य जीवने न क्षमो भवेत् ॥ 6 ॥

धन्य है वह पुरुष जिसने अहिंसाव्रत धारण किया है। मृत्यु जो सब जीवों को खा जाती है उसके सुदिनों पर हमला नहीं करती।

विपत्तिकाले सम्प्राप्ते प्राप्ते च प्राणसंकटे ।

तथाप्यन्यप्रियप्राणान् मा जहि त्वं दयाद्र्घद्धीः ॥ 7 ॥

तुम्हारे प्राण संकट में भी पड़ जावे तब भी किसी की प्यारी जान मत लो।

श्रुयते बलिदानेन लभ्यन्ते वरसम्पदः ।

पवित्रस्य परं दृष्टौ तास्तुच्छाश्च धृणास्पदाः ॥ 8 ॥

लोग कहते हैं कि बलि देने से बहुत सारे वरदान मिलते हैं, परन्तु पवित्र हृदय वालों की दृष्टि में वे वरदान जो हिंसा करने से मिलते हैं जग्न्य और धृणास्पद हैं।

येषां जीवननिर्वाहोहिंसायामेव निर्भरः ।

विबुधानां सुदृष्टौ ते मृत्स्वादकसत्त्विभाः ॥ 9 ॥

जिन लोगों का जीवन हत्या पर निर्भर है, समझदार लोगों की दृष्टि में वे मृतकभोजी के समान हैं।

पूतिगन्धसमायुक्तं पश्च शीर्ण फलेवरम् ।

स घातकचरो नूनं बुधैरित्यनुमीयते ॥ 10 ॥ कुरुकाव्य-33 अहिंस

देखो, वह आदमी जिसका सड़ा हुआ शरीर पीवदार घावों से भरा हुआ है, वह पिछले भवों में रक्तपात बहाने वाला रहा होगा, ऐसा बुद्धिमान लोग कहते हैं।

महतां हि धनं चितं करुणासंभृतम् ।

अन्यद् द्रव्यं यतो लोके हीनर्वोऽपि दृश्यते ॥ 11 ॥

दया से लबालब भरा हुआ हृदय ही संसार में सबसे बड़ी सम्पत्ति है क्योंकि भौतिक विभूति तो नीच मनुष्यों के पास भी देखी जाती है।

यथाक्रमं समीक्ष्यैव दयां चितेन पालयेत् ।

सर्वे धर्मा हि भाषन्ते दया मोक्षस्य साधनम् ॥ 12 ॥

ठीक पद्धति से सोच विचार कर हृदय में दया धारण करो और यदि तुम सब धर्मों से इस बारे में पूछकर देखोगे तो तुम्हें मालूम होगा कि दया ही एकमात्र मुक्ति का साधन है।

असूर्या नाम ये लोका अन्धेन तमसावृता ।

ताँस्ते प्रेत्य न गच्छन्ति येषां चित्ते दयालुता ॥ 13 ॥

जिन लोगों का हृदय दया से ओत-प्रोत है वे अंधकारपूर्ण नरक में प्रवेश न करेंगे।

अंहसां न फलं तेषां भुक्ते सर्वदयारतः ।

येषां स्मरणमात्रेण नूनमात्मा प्रकम्पते ॥ 14 ॥

जो मनुष्य सब जीवों पर कृपा तथा दया दिखलाता है उसे उन पापपरिणामों को नहीं भोगना पड़ता जिन्हें देखकर ही आत्मा कांप उठती है।

दयालुः पुरुषो नैव जायते कलेशभाजनम् ।

साक्षणी तत्र वातानां वलयैवेष्टिता मही ॥५

कलेश दयालु पुरुषों के लिए नहीं है, वातवलय—वेष्टित पृथ्वी इस बात की साक्षी है।

हन्त येन दयार्थमस्त्यक्तः पापान्ध्यचेतसा ।

विस्मृतं तेन भुक्तवापि धर्मत्यजनदूष्फलम् ॥६

खेद है उस आदमी पर जिसने दयार्थम् को त्याग दिया है और पाप के फल को भोगकर भी उसे भूल गया है।

यथा वैभवहीनाय नायं लोकः सुखाकरः ।

न तथा परलोकोऽपि कारुण्यक्षणवृत्तये ॥७

जिस प्रकार यह लोक धनहीन के लिए नहीं, उसी प्रकार परलोक निर्दयी मनुष्य के लिए नहीं है।

ऐहीकार्थं परिक्षणः कदाचिद् धनिको भवेत् ।

परं भूतदयारिको नामुत्र सुदिनोदयः ॥८

ऐहिक वैभव से शून्य, गरीब लोग तो किसी दिन समृद्धिशाली हो सकते हैं, परन्तु जो लोग दया और ममता से रहित हैं सचमुच ही वे कंगाल हैं और उनके सुदिन कभी नहीं फिरते।

सुलभं नो यथा सत्यं कशायवशवर्तिनः ।

प्रशस्तं तथा कार्यं सुकरं निष्ठुरात्मना ॥९

विकार ग्रस्त मनुष्य के लिए सत्य को पा लेना जितना सहज है, नहीं कठोर हृदय वाले पुरुष के लिए नीति के काम करना भी उतना ही आसान नहीं है।

दुर्बलं वाधितुं कूर यदोत्साहेन चेष्टसे ।

तत्पदे स्वं तदा मत्वा चिन्तयस्व निजस्थितिम् ॥१० कुरलकाव्य—२५दया जब तुम किसी दुर्बल को सताने के लिए उद्यत हो तो सोचो कि अपने से बलवान मनुष्य के आगे भय से जब तुम कौपोगे तब तुम्हें कैसा लगेगा?

अहिंसा व्रती चाण्डाल, देवों द्वारा पूजित

निन्द्यः श्वपाकोऽपि सूरैरनेकैः संपूजितः शीलफलेन राजा ।

संस्पृश्यभावं हयु पनीतंवांस्तं शीलं ततोऽहं खलु पालयामि ॥११

शील के प्रभाव से अतिशय निन्दनीय चाण्डाल भी अनेक देवों के द्वारा पूजित होकर राजा के द्वारा स्पर्श करने के योग्य किया गया है। इसलिए मैं उस शील का परिपालन करता हूँ।

इसी आर्यखण्ड के भीतर पोदनपुर में राजा महाबल राज्य करता था। उसके पुत्र का नाम बल था। राजा ने नन्दीश्वर (आष्टाहिका) पर्व की अष्टमी को आठ दिन तक जीव हिंसा न करने की घोषणा करायी। उधर उसका पुत्र बल कुमार अति मांस प्रिय था। उसने इन दिनों में किसी भी पुरुष को न देखकर गुप्त रीति से बगीचे में राजा के मेढे का वध कराया और उसे पकाकर खाया। राजा को

जब उसके वध का समाचार ज्ञात हुआ तब उसे बहुत क्रोध आया। उसने उक्त मेढे के मारने वाले मनुष्य को खोजना प्रारम्भ किया। जब बगीचे में वह मेढा मारा जा रहा था, तब वृक्ष के ऊपर चढ़े हुए माली ने उसे देख लिया था। उसने रात में मेढे के मारने की बात अपनी स्त्री से कही। उसे वहाँ पास में स्थित किसी गुप्तचर ने सुन लिया था। उसने जाकर मेढे के मारे जाने का वृतान्त राजा से कर दिया। तब प्रभातकाल में वह माली वहाँ बुलाया गया। उसने उसी प्रकार से फिर से वह वृत्तान्त कह दिया। मेरी आज्ञा को मेरा पुत्र ही भग करता है, यह सोचकर राजा को क्रोध उत्पन्न हुआ। तब उसने कोतवाल को कुमार के नौ खण्ड कराने की आज्ञा दी। तत्पश्चात् कुमार को मारने के स्थान में ले जाकर जो राजपुरुष चाण्डाल को लेने के लिये गये थे उन्हें देखकर चाण्डाल ने अपनी पत्नी से कहा कि हे प्रिय! तुम इन पुरुषों से कह देना कि आज चाण्डाल गाँव को गया है। यह कहकर वह घर के कोने में छप गया। तत्पश्चात् उन पुरुषों द्वारा चाण्डाल के बुलाये जाने पर चाण्डालनी ने उनसे कह दिया कि वह आज गाँव गया है। यह सुनकर उन पुरुषों ने कहा कि वह पुण्यहीन है जो आज गाँव को गया है। आज राजकुमार का वध करने पर उसे बहुत सुवर्ण और रत्नों आदि का लाभ होने वाला था। उनके इस कथन को सुनकर उस चाण्डालनी को धन का लोभ उत्पन्न हुआ। तब उसने चाण्डाल के भय से बार—बार यही कहा कि वह तो गाँव को गया है परन्तु इसके साथ ही उसने हाथ के संकेत से दिखला भी दिया। तब उन लोगों ने उसे घर के भीतर से निकालकर मारने से लिए उस कुमार को समर्पित किया। इस पर चाण्डाल ने उनसे कहा कि मैं आज चतुर्दशी के दिन जीव—हिंसा नहीं करता हूँ। तब उन लोगों ने उसे ले जाकर राजा को दिखलाते हुए कहा कि देव! यह राजकुमार को नहीं मार रहा है। इस पर उस चाण्डाल ने राजा से कहा कि हे देव! एक बार मुझे सर्प ने काट लिया था, तब लोग मुझे मरा हुआ समझकर शमशान में ले गये, वहाँ मैं सर्वांश्चित्रद्विष्टि के धारक मुनि के शरीर से संगत वायु के स्पर्श से जीवित हो गया। तब मैंने उनके समीप चतुर्दशी को जीवों की हिंसा न करने रूप अहिंसाणुव्रत को ग्रहण कर लिया था। इसलिए मैं आज जीव वध नहीं कर रहा हूँ। अब आप जो उचित समझ करें। चाण्डाल के इस कथन को सुनकर राजा ने विचार किया कि भला चाण्डाल के भी व्रत हो सकता है? बस यही सोचकर उसका क्रोध भड़क उठा। तब उसने उन दोनों को ही बंधवाकर शिशुमारद्रह (हिंसक जलजन्तुओं से व्याप्त तालाब) में पटकवा दिया। परन्तु उस चाण्डाल ने चूँकि मरण के सन्मुख होने पर भी अपने ग्रहण किये हुए अहिंसाणुव्रत को नहीं छोड़ा था इसलिए उस व्रत के प्रभाव से जल देवता ने उसे जल के मध्य में सिंहासन देकर मणिमय मण्डप, दुन्दुभि और साधुकार (साधु कृतम् साधु कृतम् यह शब्द) आदि प्रातिहार्य किये। इस घटना को सुनकर महाबल राजा बहुत भयभीत हुआ। इस प्रकार चाण्डाल भी जब शील के प्रभाव से देवों द्वारा पूजित हुआ है तब दूसरा कोई अहिंसक, देवों द्वारा क्यों पूजित नहीं होगा? अवश्य होगा।

अध्याय—४

आत्म—हिंसक परम—हिंसक

व्युत्थानावस्थायां रागादीनां वशप्रवृत्तायाम् ।

त्रियतां जीवो मावा धावत्यग्रे ध्रुवं हिंसा ॥ १४

जो प्रमादी जीव कषायों के वशीभूत होकर गमनादि क्रिया यत्न पूर्वक नहीं करता वह “जीव मरे अथवा नहीं मरे” हिंसा के दोष का भागी अवश्य होता है, क्योंकि हिंसा कषाय भावों से उत्पन्न होती है और इसके कषाय भाव का सद्भाव है ही। इस वाक्य से प्राणों को पीड़ा न होते भी हिंसा सिद्ध होती है। यदि पूर्वकथित प्राण व्यपरोपण मात्र(प्राणीपीड़नमात्र) लक्षण कहा होता तो अव्याप्तिदूषण आता। बिना किसी के प्राणों का घात हुए ही हिंसा क्यों हो गयी? इस प्रश्न का समाधान आगे के श्लोक से हो जायेगा।

यस्मात्सक्षायः सन् हन्त्यात्मा प्रथममात्मनात्मानम् ।

पश्चाज्जायेत न वा हिंसा प्राण्यन्तराणां तु ॥ १४७ पुरुषार्थसिद्धयुपायः

हिंसा शब्द का अर्थ घात करना है परन्तु घात दो प्रकार का है एक आत्मघात, दूसरा परघात। जिस समय आत्मा में कषाय भावों की उत्पत्ति होती है उसी समय आत्मघात हो जाता है। पीछे यदि अन्य जीवों की आयु पूरी हो गयी हो अथवा पाप का उदय आया हो तो उनका भी घात हो जाता है, अन्यथा आयुकर्म पूर्ण न हुआ हो, पाप का उदय न आया हो तो कुछ भी नहीं होता, क्योंकि उनका घात उनके कर्मों के अधीन है, परन्तु आत्मघात तो कषायों की उत्पत्ति होते ही हो जाता है और आत्मघात तथा परघात दोनों ही हिंसा है।

हिंसा के भेद :—

संरम्भादित्रिकं योगैः कषायैव्यहितं क्रमात्

शतमष्टाधिकं ज्ञेयं हिंसाभैदैस्तु पिण्डितम् ॥ १९

संरम्भ आदि तीन को क्रम से तीनों योगों और चार कषायों से गुणित करके पुनः हिंसा भेदों से कृत, कारित और अनुमोदना इन तीन से भी गुणित करने पर सब भेद एक सौ आठ ($3\times 3\times 3\times 4=108$) जानना चाहिये।

हिंसा के संकल्प करने का नाम संरम्भ है। उसके साधनों को जुटाना व उनका अभ्यास करना इसे समारम्भ कहा जाता है तथा उसमें प्रवृत्त हो जाना, यह आरम्भ है। ये तीनों मन—वचन और काय से सम्बन्ध होकर स्वयं किये जाते हैं, दूसरे को प्रेरित करके कराये जाते हैं तथा किसी को करते—कराते देखकर उनके विषय में प्रसन्नता भी प्रगट की जाती है। ये सब ही क्रोधादि चार कषायों में से किसी—न—किसी कषाय की अपेक्षा करते हैं। इन भेदों को इस प्रकार से समझना चाहिये।

1. क्रोधकृत काय संरम्भ,
2. मानकृतकाय संरम्भ,
3. मायाकृतकाय संरम्भ,
4. लोभकृतकाय संरम्भ,

5. क्रोधकारितकाय संरम्भ, 6. मानकारितकाय संरम्भ,

7. मायाकारितकाय संरम्भ, 8. लोभकारितकाय संरम्भ,

9. क्रोधानुमतकाय संरम्भ, 10. मानानुमतकाय संरम्भ,

11. मायानुमतकाय संरम्भ, 12. लोभानुमतकाय संरम्भ ।

इस प्रकार ये 12 भेद कायसंरम्भ के हुए, इसी प्रकार 12—12 भेद वचन संरम्भ और मन संरम्भ के भी होंगे। इस प्रकार के संरम्भ के सब भेद छत्तीस (36) हो जाते हैं। इस प्रकार 36 संमारम्भ के 36 ही आरम्भ के भेद करने पर सब भेद 108 हो जाते हैं। यदि क्रोधादि कषायों में अनंतानुबन्धी व अप्रत्याख्यानावरणादिरूप विशेष क्रोधादि की विवक्षा हो तो वे सब भेद 432 (108x4) हो जायेंगे। (ज्ञानार्थव) अहिंसा प्रतिज्ञा के बिना हिंसा

हिंसायाअविरमणं हिंसापरिणमनमपि भवति हिंसा ।

तस्मात्प्रमत्तयोगे प्राणव्यपरोपणं नित्यम् ॥ १४८ ज्ञानार्थव

परजीव के घातरूप हिंसा दो प्रकार की होती है—पहली अविरमणरूप और दूसरी परिणमनरूप।

1. अविरमणरूप हिंसा—उसे कहते हैं, जो जीव के परघात में प्रवृत्त न होने पर भी हिंसा त्याग की प्रतिज्ञा के बिना हुआ करती है। क्रिया के बिना ही यह हिंसा क्यों होती है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जिस पुरुष के हिंसा का त्याग नहीं है वह यद्यपि सोते हुए बिलाव की तरह किसी समय हिंसा में प्रवृत्ति नहीं भी करता परन्तु उसके अन्तरंग में हिंसा करने के भाव का सद्भाव है। अतएव वह अविरमण रूप हिंसा का भागी होता है।

2. परिणमनरूप हिंसा—उसे कहते हैं जो जीव को परजीव के घात के मन, वचन, काय से प्रवृत्त होने पर होती है। इन दोनों प्रकार की हिंसाओं में प्रमाद सहित योग का अस्तित्व पाया जाता है और जब तक प्रमाद पाया जाता है, तब तक हिंसा का अभाव किसी प्रकार नहीं हो सकता, क्योंकि प्रमाद योग में सदाकाल परजीव की अपेक्षा भी प्राणघात का सद्भाव होता है। अतएव प्रमाद के परिहारार्थ परजीवों की हिंसा के त्याग में दृढ़ प्रतिज्ञ होना चाहिये, जिससे दोनों प्रकार की हिंसाओं से बचा रहे।

हिंसाफल वैचित्र्यः—

अविधायपि हि हिंसा हिंसाफल भुग् भवत्येकः।

कृत्वाप्यपरौ हिंसा हिंसाफल भाजनं न स्यात् ॥ १५१ अन्यस्य भाजनं न स्यात्

जिसके परिणाम हिंसा रूप हुए चाहे वे परिणाम हिंसा का कोई कार्य न कर सके हो तो भी वह हिंसा के फल को भोगेगा और जिस जीव के शरीर से किसी कारण हिंसा तो हो गयी परन्तु परिणामों में हिंसा नहीं आई वह जीव हिंसा करने का भागी कदापि नहीं होगा।

एकस्यात्पा हिंसा ददाति काले फलमनल्पम् ।

अन्यस्य महा हिंसा स्वल्पफला भवति परिणामे ॥ १५२

जो पुरुष बाह्य हिंसा तो थोड़ी कर सका हो परन्तु अपने परिणामों को

हिंसा भाव से अधिक लिप्त रखे हों, वह तीव्र कर्मबन्ध का भागी होगा और जो पुरुष परिणामों में हिंसा के अधिक भाव न रखकर बाह्य हिंसा अचानक बहुत कर गया हो वह मन्द-कर्मबन्ध का भागी होगा।

एकस्य सैव तीव्रं दिशति फलं सैव मन्दमन्यस्य ।

व्रजति सहकारिणोरपि हिंसा वैचित्र्यमत्र फलकाले ॥ ५३

यदि दो पुरुष मिलकर हिंसा करें तो उनमें से जिसके परिणाम तीव्र कषायरूप हुए हों, उसे हिंसा का फल अधिक भोगना पड़ेगा और जिसके परिणाम मन्द कषायरूप रहे हों उसे अल्प फल भोगना पड़ेगा।

प्रागेव फलति हिंसा क्रियमाणा फलति च कृतापि ।

आरभ्य कर्तुमकृताऽपि फलति हिंसानुभावेन ॥ ५४ पु. सि.

किसी ने हिंसा करने का विचार किया परन्तु अवसर न मिलने से उस हिंसा के करने के पहले ही उन कषाय परिणामों के द्वारा (जिनमें हिंसा का संकल्प किया गया था) बंधे हुए कर्मों का फल उदय में आ गया और तब इच्छित हिंसा करने को समर्थ हो सका, ऐसी अवस्था में हिंसा करने से पहले ही उस हिंसा का फल भोग लिया जाता है। इसी प्रकार किसी ने हिंसा करने का विचार किया और उस विचार द्वारा बाँधे हुए कर्मों के फल को उदय में आने की अवधि तक वह उक्त हिंसा करने में समर्थ हो सका तो ऐसी दशा में हिंसा करते समय ही उसका फल भोगना सिद्ध होता है। किसी ने सामान्यतः हिंसा करके फिर उसका फल उदय काल में पाया अर्थात् कर चुकने पर फल पाया। किसी ने हिंसा करने का आरभ्य किया था परन्तु किसी कारण हिंसा करने में समर्थ नहीं हो सका तथापि आरभ्य जनित बंध का फल उसे अवश्य ही भोगना पड़ेगा अर्थात् न करने पर भी हिंसा का फल भोगा जाता है। प्रयोजन के बल इतना ही है कि कषाय भावों के अनुसार फल मिलता है।

एकः करोति हिंसां भवन्ति फलभागिनो बहवः ।

बहवो विदधति हिंसां हिंसाफलमुग्भवत्येकः ॥ ५५

किसी जीव को मारते देखकर अन्य देखने वाले जो अच्छा कहते और प्रसन्न होते हैं वे सब ही हिंसा फल के भागी होते हैं। इसी से कहते हैं कि एक करता है और फल अनेक भोगते हैं तथा इसी प्रकार संग्राम में हिंसा तो अनेक पुरुष करते हैं परन्तु उन पर आज्ञा करने वाला राजा उस सब हिंसा के फल का भागी होता है अर्थात् अनेक करते हैं फल एक भोगता है।

कस्यापि दिशति हिंसा हिंसाफलमेकमेव फलकाले ।

अन्यस्य सैव हिंसा दिशत्यहिंसा फलं विपुलम् ॥ ५६

हिंसा फलमपरस्य तु ददात्यहिंसा तु परिणामे ।

इतरस्य पुनर्हिंसा दिशत्यहिंसाफलं नान्यत् ॥ ५७ पुरुषार्थ सि.

कोई जीव के बुरा करने का यत्न कर रहा हो, परन्तु उस (जीव) के पुण्य से कदाचित् बुरे की जगह भला हो जाए तो भी बुराई का यत्न करने वाला बुराई के फल का भागी होगा। इसी प्रकार कोई वैद्य नीरोग करने के अर्थ किसी रोगी

की औषधि कर रहा हो और वह रोगी कदाचित् कारणवश मर जावे तो वैद्य अहिंसा के ही फल को भोगेगा।

हिंसैव नरकामारप्रतोली प्रांशुविग्रहा ।

कुठारीव द्विघा कर्तुं भेत्रुं शूलाति निर्दमा ॥ १२ ज्ञानार्थव

यह हिंसा नरकरूप घर के भीतर प्रविष्ट होने के उन्नत शरीर वाला (ऊँचा) गोपुरद्वारा है—जिस प्रकार किसी नगर या विशाल प्रासाद में प्रविष्ट होने के लिए उसका प्रधान द्वार ही कारण होता है उसी प्रकार नरकों के भीतर प्रवेश पाने का मुख्य कारण वह हिंसा ही है। वहाँ नरकों में प्राणी के शरीर को खण्ड-खण्ड करने के लिये वह हिंसा कुठारी (कुल्हाड़ी) के समान तथा उसको छिन्न-भिन्न करने के लिए वह अतिशय कठोर शूली के समान है।

क्षमादिपर मोदारैर्यमैर्य वर्धितश्चिरम् ।

हन्यते स क्षणादेव हिंसया धर्मपादपः ॥ १३

जो धर्मरूप वृक्ष क्षमा—मार्दवादि रूप अतिशय महान् संयमों के द्वारा चिरकाल से बढ़ाया गया था उसे हिंसा क्षणभर में ही नष्ट कर देती है।

तपोयमसमाधीनं दानाद्ययन कर्मणाम् ।

तनीत्यविरतं पीडां हृदि हिंसा क्षणं स्थिता ॥ १४

हिंसा क्षणभर भी हृदय में स्थित होकर तप, संयम, समाधि, दान और स्वाध्याय आदि क्रियाओं को पीड़ा पहुँचाती है। अभिप्राय यह है कि यदि क्षणभर के लिये भी प्राणिधात का विचार किया जाता है तो उससे तप—संयमादि सब ही नष्ट हो जाते हैं।

अहो व्यसनविधस्तैलोकः पाखण्डिभिर्वलात् ।

नीयते नरकं घोरं हिंखशास्त्रोपदेशकैः ॥ १५

खेद है कि व्यसनों से आहत होकर हिंसक शास्त्रों का उपदेश करने वाले हिंसा विधायक शास्त्रों की रचना व उनका वैसा व्याख्यान करने वाले धूर्त मनुष्य प्राणियों को जबरन भयानक नरक में ले जाते हैं। अभिप्राय यह है कि जो दूसरों से हिंसा के उपदेश को सुनकर उसमें अनुरक्त होते हैं वे नियम से नरक में जाते हैं।

शंखादिषु धोरेषुविशन्ति पिशिताशनाः ।

तेष्वेव हि कदर्श्यन्ते जन्तुद्यातकृतोद्यामाः ॥ १६

जो प्राणी मांस का भक्षण करते हैं तथा अन्य प्राणियों के घात में प्रयत्नशील रहते हैं वे भयानक शंख (सातवीं पृथ्वी में स्थित एक नारक बिल) आदि नरकों में प्रविष्ट होकर वहीं पर पीड़ा का अनुभव करते हैं।

हिंसैव दुर्गतेद्वारं हिंसैव दुरितार्णवः ।

हिंसैव नरकं घोरं हिंसैव गहनंतमः ॥ १८

हिंसा ही नरकादिरूप दुर्गति का द्वार है, वही पाप का समुद्र है, वही भयानक नरक है और वही गाढ़ अन्धकार है।

निःस्पृहत्वं महत्वं च नैराश्यं दुष्करं तपः ।

कायकलेशश्च दानं च हिंसकानामपार्थकम् ॥ १९

निर्ममता, महानता, तृष्णा का परित्याग, दुर्द्वर तप कायकलेश और दान ये सब हिंसक जीवों के व्यर्थ होते हैं—हिंसा में निरत होने से उन्हें इनका कुछ भी फल नहीं प्राप्त होता।

आत्मैवोहिक्षय तेनाशु प्रक्षिप्तः श्वभ्रसागरे ।

स्नेहभ्रमभयेनपि येन हिंसा समर्थिता ॥ ३५ ॥

जिस मनुष्य ने स्नेह, भ्रान्ति अथवा भय के कारण भी हिंसा का समर्थन किया है उसने अपने आपको उठाकर शीघ्रता से नरक रूप समुद्र में फेंक दिया है। बलिभिर्दुर्बलस्यात्र क्रियते यः पराभवः ।

परलोके स तैस्तस्मादनन्तः प्रविष्टह्वते ॥ ३७ ॥

बलवान् प्राणियों के द्वारा जो यहाँ दुर्बल प्राणी का पराभव किया जाता है—उसे जितना कष्ट पहुँचाया जाता है उसकी अपेक्षा वे परलोक में अनन्तगुण कष्ट को सहते हैं।

निर्स्तिश इव निर्स्तिं यस्य चेतोऽस्ति जन्तुषु ।

तपः श्रुताद्यनुष्ठानं तस्य क्लेशाय केवलम् ॥ ४३ ॥

जिसका अन्तःकरण प्राणियों के विषय में तलवार के समान कठोर है—दया से रहित है—उसके द्वारा किया जाने वाला तपश्चरण और आगमाभ्यास केवल क्लेश का ही कारण होता है—प्राणि दया के बिना वे दोनों निरर्थक हैं। द्व्योरपि समं पापं निर्णीतं परमागमे ।

वधानुमोदयोः कर्त्तोरसत्संकल्पं संश्रयात् ॥ ४४ ॥

जो प्राणिवध को स्वयं करता है और उसकी अनुमोदना करता है—उसे भला समझता है—उन दोनों के ही पाप को परमागम में समान निश्चित किया गया है। कारण इसका यह है कि जैसा निकृष्ट विचार वध करने वाले का होता है वैसा ही निकृष्ट विचार उसकी अनुमोदना करने वाले का भी होता है। दूयते यस्तुणेनापि स्वशरीरे कर्दीयते ।

स निर्दयः परस्याद्वे कथं शस्त्रं निपातयेत् ॥ ४७ ॥

जो मनुष्य अपने शरीर के तिनके द्वारा भी पीड़ित किये जाने पर व्याकुल होता है वह निर्दय होकर दूसरे प्राणी के शरीर पर शस्त्र का प्रहार कैसे करता है? तात्पर्य यह है कि मनुष्य को अपनी पीड़ा के ही समान दूसरे प्राणियों की भी पीड़ा का अनुभव करना चाहिए।

स्वान्ययोरप्यनालोच्य सुखं दुःखं हिताहितम् ।

जन्तुन् यः पातकी हन्यात् स नरत्वेऽपि राक्षसः ॥ ५० ॥ ज्ञानार्णव

जो पापी मनुष्य अपने और जो दूसरों के भी सुख-दुःख का तथा हित-अहित का विचार न करके प्राणियों का घात करता है उसे मनुष्य के रूप में राक्षस समझना चाहिए।

हिंसा का फल—

लाट देश के भृगुक्ष्य नगर में राजा लोकपाल रहता था। वहीं एक धनपाल नामक सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम धनश्री था। धनश्री जीव हिंसा से कुछ भी विरत नहीं थी अर्थात् निरन्तर जीव हिंसा में तत्पर रहती थी। उसकी सुन्दरी नाम की पुत्री और गुणपाल नाम का पुत्र था। जब धनश्री के और पुत्र नहीं हुआ था तब उसने एक कुण्डल नामक बालक का पुत्र बुद्धि से पालन-पोषण किया। समय पाकर जब धनपाल की मृत्यु हो गई तब गुण और दोषों को जानने लगा तब उससे शंकित होकर धनश्री ने कुण्डल से कहा कि मैं गोखर में गाँ चराने के लिए गुणपाल को जंगल भेज़ूंगी सो तुम उसके पीछे लगकर उसे वहाँ मार डालो जिससे हम दोनों का स्वच्छन्द रहना हो जायेगा—कोई रोक नहीं सकेगा। यह सब कहती हुई माता को सुन्दरी ने सुन लिया। इसलिये उसने अपने भाई गुणपाल से कह दिया कि आज रात्रि में गोधन लेकर गोखर में माता तुम्हें जंगल भेज़ूंगी और वहाँ कुण्डल के हाथ से तुम्हें मरवा डालेंगी, इसलिए तुम्हें सावधान रहना चाहिए।

धनश्री ने रात्रि के पिछले पहर गुणपाल से कहा—हे पुत्र ! कुण्डल का शरीर ठीक नहीं है इसलिए आज तुम गोखर में गोधन लेकर जाओ। गुणपाल काठ को कपड़े से ढककर छिपकर बैठ गया। कुण्डल ने आकर 'यह गुणपाल है' ऐसा समझाकर वस्त्र से ढँके हुए काठ पर प्रहार किया। उसी समय गुणपाल ने तलवार से उसे मार डाला। जब गुणपाल घर आया तब धनश्री ने पूछा कि रे गुणपाल ! कुण्डल कहाँ गया ? गुणपाल ने कहा कि कुण्डल की बात को तो यह तलवार जानती है। तदनन्तर खून से लिप्त बाहु को देखकर धनश्री ने उसी तलवार से गुणपाल को मार दिया। भाई को मारती देख सुन्दरी ने उसे मूसल से मारना शुरू किया। इसी बीच में कोलाहल होने से कोतवाल ने धनश्री को पकड़कर राजा के आगे उपस्थित किया। राजा ने उसे गधे पर चढ़ाया तथा कान, नाक आदि कटवाकर दण्डित किया, जिससे मरकर दुर्गति को प्राप्त हुई।

मोक्ष पुरुषार्थ—जो कि उपर्युक्त तीनों पुरुषार्थ से सर्वोच्च उपाय है उस में भी प्रायः सामान्य धर्मावलम्बी से लेकर साधु—संत तक संकीर्ण, धर्मान्ध, कट्टर पंथ—मत, पूजा—पाठ, रीति—रिवाज, अनुपयोगी बाह्य क्रियाकाण्ड में लिप्त रहते हैं तथा अन्य से भेद—भाव, ईश्वा—धृणादि करते हैं, उन्हें नीचा दिखाने में तथा स्वयं को सच्चा, अच्छा—उच्च सिद्ध करने में विभिन्न अयोग्य उपायों का आलम्बन लेते हैं। वे परलोक सुख के बहाने से स्व—पर को पीड़ा पहुँचाते हैं। जब वर्तमान के साधन एवं कार्य पीड़ा कारक हैं तब भविष्य के—परलोक के साध्य एवं कार्य कैसे सुखकर हो सकता है? कदापि नहीं परन्तु संकीर्ण—कठोर, धर्मान्ध, संकीर्ण स्वार्थी यह सब न जानता है, न मानता है न अपनाता है।

अध्याय—५

अन्य की रक्षा : स्व की रक्षा

अवन्ति देश के शिरोष नामक ग्राम में, जहाँ के उद्यानों में सभी जन—समूह आनन्द पूर्वक विचरते हैं, मृगसेन नाम का धीवर रहता था। एक दिन वह केंधे पर लटकाए हुए मछिलयों के फँसाने के काँटे व जाल आदि साधनों को लेकर मछली लाने के लिए विचरता हुआ ऐसी क्षिप्रा नदी की ओर चला, जो कि अपनी तरंगों के जल प्रवाह द्वारा तटवर्ती वृक्ष श्रेणी को और खेतों को डुबो रही थी।

मार्ग में उसने श्री यशोधर आचार्य के दर्शन किये, जो कि समस्त मुनियों की सभा में श्रेष्ठ थे और समस्त भाग्यशाली राजाओं द्वारा पूजित थे और मिथ्यात्व से रहित (सम्यग्दर्शनपूर्वक) धर्म का आचरण करने वाले थे।

उस धीवर का हृदय निकट में पुण्य प्राप्त करने योग्य था, इसलिये उसने पापार्जन में सहायक जाल आदि उपकरण—समूह दूर स्थान पर छोड़ दिये और आचार्य श्री के पास पहुँचा और उह्नें सादर साष्टांग नमस्कार किया, उस समय उसके पाप विशेष रूप से गल रहे थे और उसकी चित्तवृत्ति भी एकाग्र थी। फिर उसने कहा—‘हे साधु—समाज में श्रेष्ठ और समस्त महामुनियों में उत्तम मुनिराज ! आज भाग्य से ही पुण्य—संचय का यह अवसर प्राप्त हुआ है, अतः मेरे लिए कोई व्रत देकर अनुगृहीत कीजिए।’

यह सुनकर मुनिराज ने सोचा—‘निःसन्देह बगुला—सरीखे निरन्तर मछलियों का घात करने में निर्दयी चित्त वाले इस धीवर का मन व्रत—ग्रहण के कहने में कैसे निपुण हुआ ? निःसन्देह लोक में ऐसी जनश्रुति है कि प्रायः प्राणियों की प्रकृति (स्वभाव) उत्तर काल में होने वाले हित—अहित के बिना नहीं पलटती ’ यह सोचकर उन्होंने अवधिज्ञान का उपयोग कर उसे अल्पायु निश्चय करते हुए कहा—‘हे शुभ मनोवृत्ति के आश्रय ! आज जो पहली मछली तुम्हारे जाल में फँस जाय, उसे तुम नहीं मारना और जब तक तुम्हें अपनी जीविका रूप मांस प्राप्त न हो, तब तक के लिये तुम्हारे मांस का त्याग है और यह पैतीस अक्षरों का पवित्र पंच नमस्कार मन्त्र है, इसका निरन्तर सुखी व दुःखी अवस्था में ध्यान करो।’

मृगसेन ने ‘पञ्ज की जो आज्ञा ’ ऐसा अभिप्राय करके व्रत ग्रहण कर लिए और क्षिप्रा नदी पर पहुँच कर जाल डाल कर शीघ्र वृहत्काय (बड़ी) मछली पकड़ ली। उसने अपने व्रत को स्मरण करके पहचान के लिए उस मछली के कान में कपड़े की धज्जी बांधकर जल में जीवित छोड़ दिया। फिर निकट में सुख को प्राप्त होने वाले उसने दूसरे स्थान से नदी में जाल—विक्षेप आदि कार्य किया। किन्तु वही मछली जाल में फिर आकर फँस गई, अतः उसने उसे फिर जीवित छोड़ दिया और जब वही मछलियों में श्रेष्ठ वृहत्काय वाली महामछली उसके जाल में पाँच बार फँसकर आपति में फँसी तो भी उसने उसे जीवित जल में छोड़ दिया।

इतने में सूर्य अस्ताचल पर्वत पर आश्रित हुआ—अस्त हो गया।

इसके पश्चात् स्वीकार किए हुए व्रत का पालन करने से प्रसन्न चित्त होकर खाली हाथ लौटे हुए धार्मिक मृगसेन को आते हुए जानकर उसकी पत्नी घण्टा उस पर विशेष कृपित हुई और यमराज की घण्टा—सरीखी कर्ण—कटु गाली गलौज बकती हुई अपनी झाँपड़ी में चली गई और अन्दर से किवाड़ निश्चिद्र (बन्द) करके बैठ गई।

पत्नी द्वारा गृह में प्रवेश रोका हुआ मृगसेन भी पंच नमस्कार मन्त्र के स्मरण करने में संलग्न चित्त हुआ एक जीर्ण वृक्ष के खण्ड को तकिया बना कर मस्तक के नीचे रखकर गाढ़ निद्रा ले रहा था कि इतने में उस वृक्ष की जड़ के भीतरी भाग से निकले हुए साँप के बच्चे ने उसे डस लिया, जिसके कारण विशेष कष्ट अवस्था में प्रविष्ट हुआ—मर गया। प्रभात होने पर जब उसकी धंटा नाम की स्त्री ने उसे मरा देखा तब उसने अपनी विशेष निन्दा करके विशेष शोकाकुल होकर इसी के साथ अग्नि में जल जाने का निश्चय किया तथा उसने निदान किया, कि ‘जो इसका व्रत था वही मेरा भी है और दूसरे जन्म में भी यही मेरा पति हो।’ उसके बाद उसने ईंधन से प्रज्ज्वलित कान्ति वाली चिता की अग्नि में धी—सरीखी चिकनी अपनी देह की आहुति दे दी—अपनी देह होम दी।

वेश्याओं के नेत्र रूपी कमलों के द्वारा दुगुनी हुई तोरण—पंक्ति वाली उज्जयिनी नगरी में ‘विश्व गुणा’ नाम की पट्टरानी का स्वामी और प्रजा का पालक विश्वभर’ नाम का राजा था। वहीं पर गुणपाल नाम का सेठ था। उसकी धनश्री नाम की प्रिया थी और सुबन्धु नाम की पुत्री थी। जब गुणपाल के मनोरथ रूपी पथिक के लिए प्रीति रूपी प्याऊ—सी उसकी पत्नी इस मृगसेन धीवर के आये हुए जीव से गर्भवती हुई तब वहाँ के राजा विश्वभर के विटों के साथ वार्तालाप करने में शामिल होने के कारण भाण्डजन बहुत प्रिय थे। अतः उसने नर्मभर्म नाम के विदूषक के पुत्र नर्मधर्म के लिए गुणपाल सेठ से समस्त कलाओं की श्रेणी से अलंकृत व सर्वांग सुन्दरी पुत्री की याचना की। दुर्बुद्धि राजा की इस माँग से गुणपाल ने निश्चय किया—‘यदि विदूषक के पुत्र को कन्या देता हूँ तो अवश्य कुल परम्परा का उल्लंघन होता है एवं अपकीर्ति भी फैलती है और यदि स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन करके भी यहाँ स्थित रहता हूँ तो सर्वस्व अपहरण के साथ—साथ प्राण भी जाते हैं।’ ऐसा निश्चय करके रत्न जटित करधनी से अलंकृत जंघाओं वाली अपनी पत्नी को तो अपने प्रिय मित्र श्रीदत्त सेठ के यहाँ रखी और सार सप्तति—सी अपनी पुत्री को अपने अधीन करके (साथ लेकर) क्रीड़ा वनों व जलाशयों की स्थानीभूत ‘कौशाम्बी’ देश की ओर प्रस्थान किया।

इसी बीच में धनादय और निर्धनों के गृहों में समान चित्त वृत्ति पूर्वक (भेद न रखते हुए) आहारचर्या के लिए विहार करने वाले शिवगुप्त व मुनिगुप्त नाम के दो मुनिराजों ने श्रीदत्त के आंगन में बैठी हुई धनश्री को देखा, जिनका पट्टगाहना श्रीदत्त के निकट रहने वाले (पडोसी) श्रावक द्वारा यथा विधि किया गया था एवं जिनकी शारीरिक सेवा—शुश्रूषा की गई थी।

उनमें से मुनिगुप्त मुनि ने ऐसी धनश्री को देखकर कहा—‘अरे आशर्चर्य है कि निःसन्देह इसकी कुक्षि में ऐसा कोई महान् पापों का स्थान (बड़ा पापी) महापुरुष आया हुआ प्रतीत होता है, जिस दुष्ट पुत्र के गर्भ में आने मात्र से इस बिचारी ने ऐसी शोचनीय दशा का आश्रय किया है।’

उक्त बात सुनकर मुनियों में मुख्य या ज्येष्ठ ‘शिवगुप्त’ मुनिराज ने कहा—‘मुनिगुप्त ! ऐसा मत कहो; क्योंकि यद्यपि यह सेठानी कुछ दिनों तक ऐसी शोचनीय दशा का अनुभव करती हुई दूसरे के गृह में रह रही है, तथापि इसका पुत्र समस्त वणिकों का स्वामी राज—श्रेष्ठी व निस्सीम निधि का स्वामी एवं विश्वभर राजा की राजकुमारी का वर होना चाहिए।’ अपने गृह के बाह्य द्वार पर बैठे हुए

श्रीदत्त ने उक्त ऋषि की बात सुनकर 'निःसन्देह महर्षि द्वारा कही हुई वाणी प्रायः ज्ञूठी नहीं होती' ऐसा निश्चय करके उसने अपनी वित्तवृत्ति को उस प्रकार दुष्ट संकल्प की ओर लगाई जिस प्रकार दृष्टि-विष वाला साँप दर्शन मात्र से दुष्ट संकल्प की ओर लगाता है। प्रसव के दिन समाप्त करके धनश्री ने पुत्र को जन्म दिया।

श्रीदत्त ने विचार किया—'निःसन्देह यह बच्चा अग्नि की तरह अपने आश्रय का भक्षक है, माता का इस पर स्नेह उत्पन्न होने के पूर्व इसका गुप्त वध कर देना श्रेयस्कर है।' अतः उसने धनश्री को प्रसूति के कष्ट से विशेष मूर्छों का आश्रय करने वाली (मूर्छित-बेहोश) निश्चय कर अपने कुटुम्ब की एक वृद्ध स्त्री के मुख से 'बच्चा मरा ही पैदा हुआ है' ऐसी प्रसिद्धि करके कुटिल भाषा के रहस्य के स्थान भूत हुए इसने सेवा का प्रपञ्च करने वाले—घूसखोर एक चाण्डाल को बुलाकर वध का संकेत करते हुए उसके लिए बच्चा समर्पण कर दिया। वह चाण्डाल भी राहु सरीखे कृष्ण कान्ति वाले हाथ से चन्द्र-सरीखे बच्चे को आच्छादित करके एकान्त स्थान में ले गया। वहाँ पुण्य-परमाणुओं के पुज्ज-जैसे सुन्दर शरीर-धारक इस बच्चे को देखकर इसे विशेष करुणारस उत्पन्न होने से इसका मुख प्रसन्न हो गया, अतः वह जीवित बच्चे को सुख से लिटाकर अपने स्थान पर चला गया।

इसके पश्चात् श्रीदास का छोटा बहनोई 'इन्द्रदत्त' नाम का सेठ, जो कि सभी वणिक-व्यवहार में श्रेष्ठ था, बेचने के लिए इकट्ठे किये हुए बैलों के झुण्ड की अधीनता वाले स्थान के निकटवर्ती गोकुल में पहुँचा और उसे ऐसा बालक प्राप्त हुआ, जो कि बछड़ों के लिए हितकारक प्रदेश के निकट क्रीड़ा करने के लिए आये हुए ग्वालों के बच्चों की मुख परम्परा के वार्तालाप से और छोटे बछड़ों के झुण्ड से धिरा हुआ था एवं जो अनेक चन्द्रकान्त मणिमयी शिलाओं के बीच में मौजूद था। जो ऐसा मालुम पड़ता था—मानो—लाल मणियों की निधि ही हैं। उसने कभी स्वयं पुत्र का मुख नहीं देखा था, अर्थात्—उसके पुत्र नहीं था, इसलिए उसने इसे अपने पुत्र की बुद्धि से उठा लिया। उसने विशेष आग्रहपूर्वक अपनी पत्नी राधा से कहा—'सदा बच्चों की लालसा के ध्यान में अपनी बुद्धि प्रेरित करने वाली प्रिये राधे ! यह तुम्हारे गूढ़ गर्भ से उत्पन्न हुआ पुत्र है। उसने उक्त प्रकार प्रसिद्धि को वृद्धिंगत करते हुए पुत्रोत्पत्ति का महान महोत्सव किया।

श्रीदत्त कर्ण परम्परा से यह समाचार सुनकर बच्चे का घात करने के दुरभिप्राय से यमराज—सरीखा होकर इन्द्रदत्त के घर पर पहुँच कर उससे बोला—इन्द्रदत्त ! यह भाग्यशाली भाज्जा मेरे ही स्थान पर बड़ा होना चाहिए और बहिन—सहित बच्चे को अपने गृह पर ले आया एवं पूर्व की तरह निर्दयी बुद्धि वाले उसने वध करने के लिये बच्चे को चाण्डाल के लिए दे दिया। वह चाण्डाल भी पुत्र-रूपी बर्तन को लेकर शीघ्र ही एकान्त गुफा की ओर चल दिया। जब उसने ऐसे गुणपाल के शिशु को देखकर, जो कि वायु के संचार से जिसके ऊपर से मेघ-पटल का आवरण हट गया है, ऐसे चन्द्रमा—सरीखा नेत्रों को प्यारा है। उसका हृदय दया से द्रवीभूत हो गया। अतः उसने उसे स्थूल वृक्षों से व्याप्त नदी के तट के समीप छोड़कर पूर्व की तरह वहाँ से शीघ्र चल दिया।

इसके पूर्वोपार्जित पुण्य के प्रभाव से वहाँ पर भी ऐसी गोकुल की गायों से इसका निकटवर्ती स्थान रोका गया; जो ऐसी मालुम पड़ती थी—मानो—इसकी धाँह ही हैं—इस बच्चे को देखने से जिनके थनों से दूध झार रहा था। जिन्होंने आनन्द से

विशेष रूपाने की ध्वनि प्रकट की थी। जो चरने के लिए वहाँ आई हुई थीं और जिनके थन प्रचुर मात्रा में दूध से भरे होने के कारण कुण्ड—सरीखे थे। जब सन्ध्या के समय अशोक वृक्ष के गुच्छा—सरीखा मनोज्ञ सूर्य अस्ताचल पर मुकुट—सरीखा शोभायमान हो रहा था, तब इसके पास आए हुए गोरक्षा में चतुर ग्वालों ने इसे देखा और समस्त गोकुल—गोशाला के स्वामी व ग्वालों के वंश में श्रेष्ठ एवं अपनी मुख—कान्ति द्वारा कमलों की कान्ति को तिरस्कृत करने वाले 'गोविन्द' नाम के स्वामी से कहा। पुत्र—स्नेह से व आनन्द से महान् गोविन्द भी उस बच्चे को लेकर घर आया और उसने हृदय में उत्पन्न हुए आनन्द वाली सुनन्दा नाम की प्रिया के लिए समर्पण कर दिया। लक्ष्मी के समान इस बालक का नाम 'धनकीर्ति' द्वारा।

इसके पश्चात् क्रम से बाल्यावस्था को छोड़कर श्री पति सरीखे इसने ऐसी युवावस्था प्राप्त की, जिसमें भुवनजन के मन के ग्रहण करने में बेचने—योग्य (अर्धप्राय) यौवन से प्रमुदित हुई गोपियों की नेत्ररूपी भ्रमरश्रेणी द्वारा आस्वादन करने योग्य लावण्यरूपी पुष्परस पाया जाता है।

एक दिन प्रचुर धी के व्यापार द्वारा धनोपार्जन की इच्छा से यहाँ आये हुए श्रीदत्त ने इसे देखकर गोविन्द से इसकी प्राप्ति के विषय में विस्तार से पूछा और उससे कहा—'गोविन्द ! मुझे अपने गृह पर अपने पुत्र से कुछ जरूरी बात निवेदनीय है। अतः प्रकृष्ट घुटनों वाले इस युवक को यह पत्र देखकर शीघ्र भेज दो।'

गोविन्द ने कहा—'श्रेष्ठिन् ऐसा हो !'

उसने पत्र में यह लिखा था—'माप—तोल की कला के ज्ञाता महाबल ! यह युवक हमारे वंश को ध्वंस करने के लिए अग्नि—सरीखा है, अतः या तो यह विष देकर घात करने लायक है या मूसलों द्वारा वध करने योग्य है। पिता (गोविन्द) और वैश्यपति (श्रीदत्त) द्वारा आज्ञापित हुआ धनकीर्ति उस मुद्राकिंत पत्र को अपने गले का आभूषण रूप मित्र बना कर उस उज्जयिनी नगरी की ओर चल दिया, जो कि पूर्वजन्म में किये हुए उपकार के अधीन हुई मछली के जन्म के लिए बड़े तड़ाग—सरीखी है और नगरी के निकट पहुँचकर वह नगरी के प्रवेश—मार्ग के निकटवर्ती वन में मार्ग की थकावट दूर करने के लिए आम्रवृक्ष की क्यारी के समीप देश में निश्चिततापूर्वक सो गया।

इसी अवसर पर पुष्प—चयन की क्रीड़ा करने वाली, अपने सेवक—जनों के सहित, समस्त विद्याओं में निपुण, पूर्वभव (मछली की पर्याय) में किये हुए उपकार से उससे स्नेह करने वाली एवं संजीवनी बूटी—सरीखी जीवन दात्री अनगसेना नाम की वेश्या, उसी आम्रवृक्ष के नीचे गई और ऐसे धनश्री को देखकर निश्चल नेत्रों वाली हुई, अर्थात्—टकटकी लगाकर देखने लगी जो ऐसा मालूम पड़ता था—मानो—पुष्परूपी बाणों की पराधीनता से रहित हुआ (बाणों के बिना) कामदेव ही है—जो पूर्वजन्म का मित्र है एवं जिसका शरीर समस्त शुभ लक्षणों से सुशोभित है। इसके बाद उसने स्पष्ट जानी हुई कण्ठ की तीन रेखाओं से मनोज्ञ मध्य भाग वाले उसके कंठदेश से, जो ऐसी मालूम पड़ती थी—मानो—उसकी चिरायु, लक्ष्मी व सरस्वती के समागम को सूचित करने वाली तीन रेखाएँ थीं, पत्र ग्रहण करके पढ़ा, जिसमें धनकीर्ति के वध करने की सूचक अक्षरयत्ति चारों ओर लिखी हुई थी।

इसके बाद उस निकृष्ट विणिक् को हृदय से धिक्कार देती हुई उसने अपने नेत्ररूपी अंजन की डिविया से ग्रहण किये हुए और उपवन की लताओं की नई कोपलों के रस में घोले हुए कज्जल से चाँदी की अथवा तृणों की सलाई (लेखनी) द्वारा उसी पत्र पर पहले के अक्षर मिटाकर दूसरा लेख लिखा। लेख इस

प्रकार था—‘यदि सेठानी मुझे आदरणीय वचनों वाला मानती है और यदि महाबल मुझे ऐसा पिता मानता है, जिसके वचन—समूह उल्लंघनीय नहीं हैं, तो सात पीढ़ी तक विशेष परीक्षित वंश लक्ष्मी वाले इस धनकीर्ति के लिए बिना विचार की अपेक्षा किये ब्राह्मण व अग्नि की साक्षीपूर्वक दहेज के साथ मेरी पुत्री श्रीमति देनी चाहिए।’

यथावत् मार्ग वाले इस लेख को उसके गले में बाँधकर अनंग सेना चली गई। जब विरकाल के बाद धनकीर्ति की गाढ़ निद्रा का वेग दूर हुआ तो वह उत्कण्ठापूर्वक उठा और श्रीदत्त के घर पहुँचा और उसने माता—सहित महाबल के लिए पत्र दिखाया, जिससे वह श्रीमति का पति हो गया।

श्रीदत्त इस समाचार को सुनकर शीघ्र ही लौट आया और उसने धनकीर्ति का वध करने के लिए राजधानी के बाह्य प्रदेशवर्ती चण्डिका देवी के मन्दिर में सशस्त्र वध करने का संकेत किए हुए पुरुष को एवं निन्द्य कर्म का आचरण करने वाली पिशाची—सरीखी देवपूजिका स्त्री को नियुक्त करके अपने गृह को चला गया और अत्यन्त कूट—कपट की बुद्धि वाले उसने एकान्त में धनकीर्ति को बुलाकर फिर से कहा—‘पुत्र ! निश्चय से मेरे गृह की ऐसी रीति है कि नवीन कंकण—बन्धन को स्वीकार करने वाले नवीन विवाहित कन्या के पति को रात्रि के अगले भाग में कात्यायनी देवी के प्रांगण प्रदेश में जाकर कुसुंभी रंग से रंगे हुए वस्त्र के आश्रय वाली (अर्थात्—कुसुंभी वस्त्र पहिनकर) एवं पीसे हुए उड़द से बने हुए मिठाइयों की बलि देनी चाहिए।’

इसे सुनकर धनकीर्ति बोला—‘पिताजी ! जैसी आपकी आज्ञा।’

धनकीर्ति कुलदेवता के लिए अर्पित करने योग्य वस्तुएँ लेकर नगर की बीच की गली से निकला तो उसको उसके साले महाबल ने देखकर कहा—‘धनकीर्ति ! इस गहन अँधेरी रात्री की बेला में अकेले कहाँ जा रहे हो ?’

‘महाबल ! मामा की आज्ञा से बलि देने के लिए दुर्गादेवी के मन्दिर को जा रहा हूँ।’

‘यदि ऐसा है तो तुम नागरिकों से अपरिचित हो, अतः गृह को लौट जाओ। दुर्गादेवी को यह भेट देने के लिए मैं जाता हूँ। यदि पिताजी कुपित होंगे तो मैं उनका कोप दूर कर दूँगा।’

धनकीर्ति अपने गृह पर गया और महाबल यमराज की उदररूपी गुफा में समा गया।

पुत्र—मरण के शोक से समीप दुःखित हुए श्रीदत्त ने अपनी प्रिया ‘विशाखा’ से समस्त वृतान्त निवेदित करके कहा—‘समस्त गृहकर्मों के नियमपूर्वक करने में विष्णु—सरीखी समर्थ और मेरे मन में सुख उत्पन्न करने के लिए चन्द्रपंक्ति—सरीखी ‘विशाखा’ सेठानी! इस अभागे बालक को जो कि मेरा वंश नष्ट करने में कारण है और मेरे द्वारा किये हुए अनेक कपटपूर्ण घातक उपायों के विनाश करने में केतु—जैसा समर्थ है।

कैसे मरना चाहिए ?

‘सेठानी ! (पञ्जिजकाकार के अभिप्राय से अविचारक होने के कारण अथवा टिप्पणीकार के अभिप्राय से) वृद्ध होने के कारण तुमने सब कार्य अयोग्य किया। अतः विलाव से डरे हुए मुर्मों के बच्चे की तरह तुम चुप बैठो। आपके सब मनोरथ पूर्ण होंगे।’

दूसरे दिन सेठानी ने अपने पति का जीवन व्यथित करने वाले लड्डुओं में जहर मिलाकर श्रीमति पुत्री से कहा—‘पुत्री श्रीमति ! इन लड्डुओं में से कुन्द व कुमुद—पृथ्वी कान्ति वाले श्वेत लड्डु तो अपने पति को देना और धूसरित श्याम धान्य—सरीखे श्याम लड्डु अपने पिता को देना’ इतना संकेत करके निकटवर्ती मरणवाली सेठानी नदी में स्नान करने के लिए चली गई। इसके पश्चात् श्रीमति पुत्री ने ऐसा निश्चय किया कि ‘श्वेत वर्ण वाले खाने योग्य उत्तम लड्डु तो पूज्य पिताजी के लिए देना चाहिए।’

श्रीमति को माता के चित्त की कुटिलता का पता नहीं था और वह निष्कपट मन वाली थी, इसलिए उसने उन दोनों के लिए प्रस्तुत लड्डु उलट कर दे दिये। अर्थात्—विषले लड्डु अपने पिता के लिए और निर्विष लड्डु अपने पति के लिए खिला दिये। जिससे उसका पिता श्रीदत्त काल—कवलित हो गया।

जब विशाखा स्नान करके आई तो उसका पति मर चुका था, इसलिए वह जंगल—सरीखे पति—शून्य गृह में आकर बड़ी देर तक रोई और बोली—‘पुत्र ! क्या महामुनि की वाणी मिथ्या होती है ?’ केवल तुम्हारे पिता और मुझे वृद्धा ने अपने स्थिर वंश को नष्ट करने के लिए इस कृत्य का उत्थापन किया है। इसलिए अब शोक करना व्यर्थ है। अतः अब कल्पवृक्ष के साथ कल्पलता—सरीखी तू दैव के द्वारा रक्षा किये हुए इस पति के साथ, कल्पकाल तक इन्द्रिय—सुख व ऐश्वर्य सुखों को भोगो।’ ऐसा आशीर्वाद देकर उसने भी एक जहरीला लड्डु खा लिया और पति की अनुगमिनी हो गई—मर गई।

जब धनकीर्ति के साथ समुर स्वर्य किये हुए दुरभिप्राय से पुत्र—मरण से विशेष शोकाकुल होकर कालकवलित हुए तब धनकीर्ति पूर्वजन्म सम्बन्धी पूर्ण्य के माहात्म्य से भयानक विधाँ वाली पाँच विपत्तियों को उल्लंघन करके दिनोंदिन उदित होने वाली सम्पत्ति से सुशोभित हुआ। एक दिन ‘विश्वंभर’ राजा ने उसे देखा, उसकी लावण्य सम्पत्ति देखकर राजा को विशेष आश्चर्य हुआ। उसने उसके साथ अपनी राजकुमारी का विवाह कर दिया और राजसेठ पद पर भी अधिष्ठित कर दिया। अर्थात्—इस प्रकार धनकीर्ति विवाहोत्सव व श्रेष्ठि पदोत्सव इन दोनों उत्सवों से सुशोभित हुआ।

जब धनकीर्ति के पिता गुणपाल ने किंवदन्ती परम्परा(जन—साधारण की खबर) से अपने पुत्र धनकीर्ति की कल्याण परम्परा सुनी तो वह कौशाम्बी से उज्जयिनी नगरी में आकर आशर्यजनक ऐश्वर्यशाली अपने पुत्र के साथ सम्मिलित हुआ।

एक बार स्त्री, पुत्र व मित्रादि से युक्त धनकीर्ति पुत्र के साथ और दर्शन के लिए आई हुई अनंगसेना के साथ अनुगमन करने वाले गुणपाल सेठ ने मति, श्रूत, अवधि व मनःपर्यज्ञान के धारी एवं समस्त मुनियों की मण्डली में श्रेष्ठ श्री यशोध्वज आचार्य के लिए नमस्कार करके विशेष विनय पूर्वक पूछा—‘भगवन् ! इस धर्ममूर्ति धनकीर्ति ने पूर्वजन्म में ऐसा कौन—सा पूण्य संचय किया था ? जिसके कारण इसने बचपन में भी ऐसे भीषण दुःख नष्ट किये, जो कि इसके केवल भाग्य की शरण द्वारा दूर किये जा सकते थे एवं जिससे यह इस जन्म में भी लोक से प्रचुर लक्ष्मी व लावण्य सम्पत्ति से सम्पन्न हुआ। जिसके प्रभाव से यह वैसा दैवों द्वारा भी नष्ट न किये जाने वाला तेजस्वी हुआ जैसे बहुल मेघपटल सम्बन्धी वजाग्नि का तेज पुञ्ज किसी के द्वारा नष्ट न किये जाने वाले तेज वाला होता है। जिसके प्रभाव से यह पुराण—पुरुषों—तीर्थकरादि—के पक्ष के उन—उन गुणों के साथ नित्य सम्बन्ध करने वाला हुआ।

जैसे यह विद्वता का आश्रय है, उदारता गुण का स्थान है। यह अवदान (शत्रुओं का खण्डन, सर्वपालन, सर्वप्रदान अथवा शुद्ध कर्म) का स्थान है। यह समस्त प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव की उर्वरा शक्ति है। इससे स्वन्म में भी कुटुम्बीजन के मन में खेद या अपराध उत्पन्न नहीं हुआ एवं स्त्री—समूह के लिये कामदेव—सरीखा विशेष प्यारा है। इसलिए पूज्यवर ! आप ऐसे धनकीर्ति की पूर्वजन्म में संचय किये हुए पृथ्य की कथा कहिए, जो कि वणिक—परिवत में नम्र या अनुरक्त है, जिनका मन समस्त शास्त्रों में निपुण है जो समस्त आश्रित जनों के साथ वार्तालाप करने में मधुर है। जो सदाचार से शुग्र है, एवं जिसका कथावतार रूपी चन्द्रमा शिष्यजनों के मनरूपी कवलय (चन्द्रविकास कमल) को प्रमुदित—विकसित करने वाला है और जो प्रशस्त कीर्तिमान है। मुनिराज ने इसके पूर्वजन्म की कथा कह सुनाई।

जो पूर्वजन्म में समीप रहने वाली इसकी घण्टा नाम की स्त्री थी, वह निदान बन्ध करके अग्नि में जल मरी थी, वह इस जन्म में इसकी प्रिया श्रीमती हुई है और जो मछली थी, जिसे मृगसेन ने जल में जीवित छोड़ दिया था, वह कालक्रम से पूर्वपर्याय छोड़कर दूसरी पर्याय धारण कर अनंगसेना हुई हैं अतः एक दिन हिंसा न करने का फल इस भाग्यशाली को प्राप्त हुआ है। धनकीर्ति ने उक्त आचार्यों के वचनों से अपना श्रोत्रमार्ग पवित्र किया। इसकी श्रीमती से और अनंगसेना नाम की वेश्या ने अपना पूर्वभव सुनकर अन्धकार—समूहरूप वृक्ष के प्रवेश—सरीखे—केश—पाशों का लुभयन करके उन्हीं विद्वान् आचार्य के समीप अपनी योग्यतानुसार दीक्षा ग्रहण की और जैन मार्ग के अनुसार चिरकाल तक रलत्रय का आराधन किया और मनोवृत्ति से निर्विघ्नता पूर्वक समाधिमरण किया। धनकीर्ति सर्वार्थसिद्धि विमान को प्राप्त करने में कीर्तिमान हुआ और श्रीमती और अनंगसेना भी स्वर्वगलोक में देव हुए।

पश्चकृत्वा किलेस्य मत्स्यस्याहिंसनात्पुरा।

अभूत्यश्चायदोऽतीत्य धनकीर्तिः पतिः श्रियः ॥

निःसन्देह धनकीर्ति, जिसने पूर्वजन्म में एक मछली की पाँच बार रक्षा की थी, जिससे वह पाँच भयानक आपत्तियाँ पार करके लक्ष्मी का स्वामी हुआ।

यशस्तिलक चम्पूकाव्ये

उपर्युक्त विषयों से मुझे प्राप्त शिक्षाएँ

उपर्युक्त विषयों से मुझे यह शिक्षा प्राप्त हुई कि जब अन्य लोग स्व—पर तथा इहलोक—परलोक दुःख कारक व्यवहार (स्वार्थ) में व्यस्त हैं तथा अनेक मस्त भी हैं तब मैं स्व—पर तथा इहलोक—परलोक सुखकर भाव—व्यवहार (स्वार्थ) में व्यस्त तथा मस्त क्यों न रहूँ? मेरे स्वार्थ से मेरा तो कल्याण होगा ही इसके साथ—साथ इससे दूसरों का कल्याण हो या न हो कम से कम तो मेरे से दूसरों का अकल्याण तो नहीं होगा तथा कष्ट नहीं पहुँचेगा। परमस्वार्थ सिद्धि के बाद मैं अनन्त काल तक सुखी रहूँगा तथा मुझ से अनन्त काल तक संसार का अनन्त जीवों को किसी भी प्रकार के दुःख नहीं हो सकता है। जैसा कि प्रज्ज्वलित दीपक के सम्पर्क से बुझे हुए भी अनेक दीपक प्रज्ज्वलित होकर दूसरे दीपकों के प्रज्ज्वलन के लिए भी निमित्त बन सकते हैं। नहीं तो कम से कम प्रज्ज्वलित दीपक से पहले का अन्धेरा दूर होता है और नवीन अन्धेरा उस दीपक के प्रकाश के क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकता है। वैसा ही मेरी स्वार्थ सिद्धि से दूसरों की भी स्वार्थ सिद्धि हो सकती है नहीं तो कम से कम मैं अच्छा बांगा तो संसार से एक तो बुरा जीव कम होगा ही।

सब दूसरों को अच्छा बनाने के लिए उपदेश देते हैं, दूसरों के दोष दूर करना चाहते हैं तो मुझे कम से कम दूसरों के उपदेश का लाभ उठाकर स्वयं को अच्छा बनाना श्रेय है भले परोपदेश देने वाले स्वयं को अच्छा भी न बनाये। उनसे तो मैं उपकृत होऊँगा (तत्त्वानुचिन्तन....आचार्य कनकनंदी जी)

अध्याय—6

महाभारत में वर्णित 'अहिंसा'

हन्त निःश्रेयसं जन्तोरहं वक्ष्याम्यनुत्तमम् ।

अहिंसामाश्रयं धर्म यः साधयति वै नरः ॥ 13

त्रीन् दोषान् सर्वभूतेषु निधाय पुरुषः सदा ।

कामक्रोधौ च संयम्य ततः सिद्धिमवाज्ञुते ॥ 14 पु.5852

अब मैं मनुष्य के लिए कल्याण के सर्वश्रेष्ठ उपाय का वर्णन करता हूँ। जो मनुष्य अहिंसायुक्त धर्म का पालन करता है, वह मोह, मद और मत्सरतारूप तीनों दोषों को अन्य समस्त प्राणियों में स्थापित करके एवं सदा काम—क्रोध का संयम करके सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

अहिंसकानि भूतानि दण्डेन विनिहन्ति यः ।

आत्मनः सुखमनिच्छन् स प्रेत्य न सुखी भवेत् ॥ 15

जो मनुष्य अपने सुख की इच्छा रखकर अहिंसक प्राणियों को डंडे से मारता है, वह परलोक में सुखी नहीं होता है।

आत्मोपमस्तु भूतेषु यो वै भवति पुरुषः ।

न्यस्तदण्डो जितक्रोधः स प्रेत्य सुखमेधते ॥ 16

जो मनुष्य सब भूतों को अपने समान समझता है किसी पर प्रहार नहीं करता (दण्ड को हमेशा के लिये त्याग देता है) और क्रोध को अपने काबू में रखता है, वह मृत्यु के पश्चात् सुख भोगता है।

सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतानि पश्यतः ।

देवाऽपि मार्गं मुहान्ति अपदस्य पदैषिणः ॥ 17

जो सम्पूर्ण भूतों का आत्मा है अर्थात् सबकी आत्मा को अपनी ही आत्मा समझता है तथा जो सब भूतों को समान भाव से देखता है, उस गमनागमन से रहित ज्ञानी की गति का पता लगाते समय देवता भी मोह में पड़ जाते हैं।

न ततं परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः ।

एव संक्षेपतो धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते ॥ 18

जो बात अपने को अच्छी न लगे, वह दूसरों के प्रति भी नहीं करनी चाहिये। यही धर्म का संक्षिप्त लक्षण है। इससे भिन्न जो व्यवहार होता है, वह कामना—मूलक है।

प्रत्याख्याने च दाने च सुख दुःखे प्रियाप्रिये ।

आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति ॥ 19

माँगने पर देने और इन्कार करने से, सुख और दुःख पहुँचने से तथा प्रिय तथा अप्रिय करने से पुरुष को स्वयं जैसे हर्ष—शोक का अनुभव होता है, उसी प्रकार दूसरों के लिए भी समझें।

यथा परः प्रक्रमते परेषु, तथापरे प्रक्रमन्ते परस्मिन् ।

तथैव तेऽस्तुपमा जीवलोके, यथा धर्मो नैपुणेनोपदिष्टः ॥ 110 (पु. 5852)

जैसे एक मनुष्य दूसरों पर आक्रमण करता है, उसी प्रकार अवसर आने पर दूसरे भी उसके ऊपर आक्रमण करते हैं। इसी को तुम जगत् में अपने लिए भी दृष्टान्त समझो। अतः किसी पर आक्रमण नहीं करना चाहिए। इस प्रकार यहाँ कौशल पूर्वक धर्म का उपदेश दिया है।

चतुर्विंधेयं निर्दिष्टा ह्यहिंसा ब्रह्मावादिभिः ।

एकैकौतोऽपि विश्रष्टा न भवत्यरिसूदन ॥१४ (पृ. 5853)

भीष्म जी ने कहा— शत्रुसूदन ! ब्रह्मावादी पुरुषों ने (मन से, वाणी से तथा कर्मसे हिंसा न करना एवं मांस न खाना इन) चार उपायों से अहिंसा धर्म का पालन बतलाया है। इनमें से किसी अंश की भी कमी रह गई हो तो अहिंसा धर्म का पूर्णतः पालन नहीं होता ।

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परो दमः ।

अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः ॥२८

अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम संयम है, अहिंसा परम दान है, अहिंसा परम तपस्या है।

अहिंसा परमो यज्ञस्तथाहिंसा परं फलम् ।

अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम् ॥२९

अहिंसा परम यज्ञ है, अहिंसा परम फल है, अहिंसा परम मित्र है और अहिंसा परम सुख है।

सर्वयज्ञेषु वा दानं सर्वतीर्थेषु वाऽप्लुतम् ।

सर्वदानफलं वापि नैततुल्यमहिंसया ॥३०

सम्पूर्ण यज्ञों में जो दान किया जाता है, समस्त तीर्थों में जो गोता लगाया जाता है तथा सम्पूर्ण दानों का जो फल है— यह सब मिलकर भी अहिंसा के बराबर नहीं हो सकता ।

अहिंस्त्रस्य तपोऽक्षयमहिंस्त्रो यजते सदा ।

अहिंस्त्रः सर्वभूतानां यथा माता यथा पिता ॥३१

जो हिंसा नहीं करता, उसकी तपस्या अक्षय होती है। वह सदा यश करने का फल पाता है। हिंसा न करने वाला मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों के माता—पिता के समान है।

अहिंसा (मद्य—मांस—मधु त्याग) का फल

रूपमव्यङ्गतामायुर्बुद्धिं सत्त्वं बलं स्मृतिम् ।

प्राप्तुकामैनरैहिंसा वर्जिता वै महात्मणः ॥३२

जो सुंदर रूप, पूर्णाङ्गता, पूर्ण आयु, उत्तम बुद्धि, सत्त्व बल और स्मरणशक्ति प्राप्त करना चाहते थे, उन महात्मा पुरुषों ने हिंसा का सर्वथा त्याग कर दिया था।

यो यजेताश्वमेधेन मासि मासि यतव्रतः ।

वज्येन्मधु मांसं च समेतद् युधिष्ठिर ॥३३

युधिष्ठिर! जो पुरुष नियमपूर्वक व्रत का पालन करता हुआ प्रति मास अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करता है तथा जो केवल मद्य और मांस का परित्याग करता है इन दोनों को एक—सा ही फल मिलता है।

सप्तर्षयो वालखिल्यास्तथैव च मरीचिषः । ॥३४

अमांसभक्षणं राजन् प्रशंसन्ति मनीषिणः ॥३५

राजन्! सप्तर्षि, वालखिल्य तथा सूर्य की किरणों का पान करने वाले अन्यान्य मनीषी महर्षि मांस न खाने की ही प्रशंसा करते हैं।

न भक्षयति यो मांसं न च हन्यान्न घातयेत् ।

तन्मित्रं सर्वभूतानां मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥१०

स्वायम्भुव मनु का कथन है कि जो मनुष्य न मांस खाता है और न पशु की हिंसा करता है और न दूसरे से ही हिंसा करता है, वह सम्पूर्ण प्राणियों का मित्र है।

अधृष्टः सर्वभूतानां विश्वास्यः सर्वजन्तुषु ।

साधूनां सम्मतो नित्यं भवेनामांसं विवर्जयन् ॥११

जो मनुष्य मांस का परित्याग कर देता है, उसका कोई भी प्राणी तिरस्कार नहीं कर सकता है, वह सब प्राणियों का विश्वासपात्र हो जाता है तथा श्रेष्ठ पुरुष उसका सदा सम्मान करते हैं।

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।

नारदः प्राह धर्मात्मा नियतं सोऽवसीदति ॥१२

धर्मात्मा नारद जी कहते हैं—जो दूसरे के मांस से अपना मांस बढ़ाना चाहता है, वह निश्चय ही दुःख उठाता है।

ददाति यजते चापि तपस्वी च भवत्यपि ।

मधुमांसनिवृत्येति प्राह चैवं बृहस्पतिः ॥१३

बृहस्पति जी का कथन है—जो मद्य और मांस त्याग देता है, वह दान देता है, यज्ञ करता और तप करता है अर्थात् उसे दान, यज्ञ और तपस्या का फल प्राप्त होता है।

मासि मास्यश्वमेधेन यो यजेत शतं समा ।

न खादति च यो मांसं समेतन्मतं मम ॥१४

जो सौ वर्ष तक प्रतिमास अश्वमेध यज्ञ करता है और जो कभी मांस नहीं खाता है—इन दोनों का समान फल माना गया है।

सदा यजति सत्रेण सदा दानं प्रयच्छति ।

सदा तपस्वी भवति मधुमांसविवर्जनात् ॥१५

मद्य और मांस का परित्याग करने से मनुष्य सदा यज्ञ करने वाला, सदा दान देने वाला और सदा तप करने वाला होता है।

सर्वं वेदा न तत् कुर्यात् सर्वं यज्ञाश्च भारत ।

यो भक्षयित्वा मांसानि पश्चादपि निवर्तते ॥१६

भारत ! जो पहले मांस खाता रहा हो और पीछे, उसका सर्वथा परित्याग कर दे, उसको जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उसे सम्पूर्ण वेद और यज्ञ भी नहीं करा सकते।

दुष्करं च रसज्ञाने मांसस्य परिवर्जनम् ।

चर्तुं व्रतमिदं श्रेष्ठं सर्वप्राण्यभयप्रदम् ॥१७

मांस के रस का आस्वादन एवं अनुभव कर लेने पर उसे त्यागना और समस्त प्राणियों को अभय देने वाले इस सर्वश्रेष्ठ अहिंसा व्रत का आचरण करना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

सर्वभूतेषु यो विद्वान् ददात्यभयदक्षिणां ।

दाता भवति लोके स प्राणानां नात्र संशयः ॥१८

जो विद्वान् सब जीवों को अभयदान कर देता है, वह इस संसार में निःसंदेह प्राणदाता माना जाता है।

एवं वै परमं धर्मं प्रशंसन्ति मनीषिणः।

प्राणायथाऽत्मनोऽभीष्टा भूतानामपि वै तथा।।19

इस प्रकार मनीषि पुरुष अहिंसारूप परमधर्म की प्रशंसा करते हैं। जैसे मनुष्य को अपने प्राणप्रिय होते हैं उसी प्रकार समस्त प्राणियों को अपने—अपने प्राणप्रिय जान पड़ते हैं।

आत्मौपच्येन मन्तव्यं बुद्धिमद्विकृतात्मभिः।

मृत्युतो भयमस्तीति विदुषां भूतिमिच्छताम्।।20

किं पुनर्हन्यमानानां तरसा जीवितार्थिनाम्।

अरोगाणामपापानां पापैर्मासोपजीविभिः।।21

अतः जो बुद्धिमान और पुण्यात्मा है उन्हें चाहिए कि सम्पूर्ण प्राणियों को अपने समान समझें। जब अपने कल्याण की इच्छा रखने वाले विद्वानों को भी मृत्यु का भय बना रहता है, तब जीवित रहने की इच्छा वाले निरोग और निरपराध प्राणियों को, जो मांस पर जीविका चलाने वाले पापी पुरुषों द्वारा बलपूर्वक मारे जाते हैं; क्यों न भय प्राप्त होगा।

तस्माद् विद्धि महाराज मांसस्य परिवर्जनम्।

धर्मस्यायतनं श्रेष्ठं स्वर्गस्य च सुखस्य च।।22

इसलिए महाराज ! तुम्हें यह विदित होना चाहिये कि मांस का परित्याग ही धर्म, स्वर्ग और सुख का सर्वोत्तम आधार है।

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परं तपः।

अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवृत्तते।।23

अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम तप है और अहिंसा परम सत्य है; क्योंकि उसी से धर्म की प्रवृत्ति होती है।

न हि मांसं तृणात् काष्ठादुपलाद् चापि जायते।

हत्या जन्मुं ततो मांसं तस्माद् दोषस्तु भक्षणे।।24

तृण से, काठ से अथवा पत्थर से मांस नहीं पैदा होता है, वह जीव की हत्या करने पर ही उपलब्ध होता है; अतः उसके खाने में महान् दोष है।

स्वाहास्वधामृतभुजो देवाः सत्यार्जविप्रियाः।

क्रव्यादान् राक्षसान् विद्धि जिह्वानृतपरायणान्।।25

जो लोग स्वाहा (देवयज्ञ) और स्वधा (पितृयज्ञ) का अनुष्ठान करके यज्ञशिष्ट अमृत का भोजन करने वाले तथा सत्य और सरलता के प्रेमी हैं, वे देवता हैं; किन्तु जो कुटिलता और असत्य भाषण में प्रवृत्त होकर सदा मांस भक्षण किया करते हैं उन्हें राक्षस समझा।

कान्तोरेष्वथ घोरेषु दुर्गेषु गहनेषु च।

रात्रावहनि संध्यासु चत्वरेषु समासु च।।26

उद्यतेषु च शस्त्रेषु मृगत्यालभयेषु च

अमांसभक्षणे राजन् भयमन्यैन गच्छति।।27

राजन् जो मनुष्य मांस नहीं खाता, उसे संकटपूर्ण स्थानों, भयंकर दुर्गा एवं गहन वर्णों में, रात—दिन और दोनों संध्याओं में, चौराहों पर तथा सभाओं में भी दूसरों से भय प्राप्त नहीं होता तथा यदि अपने विरुद्ध हथियार उठाये गये हों अथवा हिंसक पशु एवं सर्पों के भय सामने हो तो भी वह दूसरों से नहीं डरता है।

शरण्यः सर्वभूतानां विश्वास्यः सर्वजन्तुषु।

अनुद्वेगकरो लोके न चाप्युद्विजते सदा।।28

इतना ही नहीं, वह समस्त प्राणियों को शरण देने वाला और उन सबका विश्वासपात्र होता है। संसार में न तो वह दूसरों को उद्वेग में डालता है और न स्वयं ही कभी किसी से उद्विग्न होता है।

यदि चेत् खादको न स्यान्न तदा घातको भवेत्।

घातकः खादकार्थ्य तद् घातयति वै नरः।।29

यदि कोई भी मांस खाने वाला न रह जाये तो पशुओं की हिंसा करने वाला भी कोई न रहे; क्योंकि हत्यारा मनुष्य मांस खाने वालों के लिए ही पशुओं की हिंसा करता है।

अभक्ष्यमेतदिति वै इति हिंसा निवर्तते।

खादकार्थ्यमतो हिंसा मृगादीनां प्रवर्तते।।30

यदि मांस को अभक्ष्य समझकर सब लोग उसे खाना छोड़ दे, तो पशुओं की हत्या स्वतः ही बन्द हो जाये; क्योंकि मांस खाने वालों के लिये ही मृग आदि पशुओं की हत्या होती है।

यस्माद् ग्रसीत चैवायुहिंसकानां महाद्युते।

तस्माद् विवर्जयेन्मांस य इच्छेद् भूतिमात्मनः।।31

महातेजस्वी नरेश ! हिंसकों की आयु को उनका पाप ग्रस लेता है। इसलिए जो अपना कल्याण चाहता हो, वह मनुष्य मांस का सर्वथा परित्याग कर दे।

धन्यं यशस्यामायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्रयनं महत्।

मांसस्याभक्षणं प्राहुर्नियताः परम्याः।।35

नियम परायण मर्हिण्यों ने मांस—भक्षण के त्याग को ही धन, यश, आयु तथा स्वर्ग की प्राप्ति का प्रधान उपाय और परम कल्याण का साधन बतलाया है।

अधृष्यः सर्वभूतानामायुष्मान् नीरुजः सदा।

भवस्याभक्षण्यन् मांसं दयावान् प्राणिनामिह।।40

'जो मनुष्य मांस नहीं खाता और इस जगत में सब जीवों पर दया करता है, उसका काई भी प्राणी तिरस्कार नहीं करते और वह सदा दीर्घायु एवं निरोगी होता है।

हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ

हिरण्यदानैर्गोदानैर्भूमिदानैश्य सर्वशः।

मांसस्याभक्षणे धर्मां विशिष्ट इति नः श्रुतिः।।41

'सुर्वान्दान्', गोदान और भूमिदान करने से जो धर्म प्राप्त होता है, मांस का भक्षण न करने से उनकी अपेक्षा भी विशिष्ट धर्म की प्राप्ति होती है। यह हमारे सुनने में आया है।

भक्षयित्वापि यो मांसं पश्चादीप निवर्तते।

तस्यापि सुमहान् धर्मो यः पापाद् विनिवर्तते।।44

जो पहले मांस खाने के बाद फिर उससे निवृत हो जाता है, उसको भी अत्यन्त महान् धर्म की प्राप्ति होती है; क्योंकि वह पाप से निवृत हो गया है।

इदमृन्यत वक्ष्यामि प्रमाणं विधिनिर्मितम्।

पुराणमृषिभिर्जुष्टं वेदेषु परिनिष्ठतम्।।46

अब मैं इस विषय में दूसरा प्रमाण बता रहा हूँ जो साक्षात् ब्रह्मा जी के द्वारा प्रतिपादित, पुरातन, ऋषियों द्वारा सेवित तथा वेदों में प्रतिष्ठित है।

प्रवृत्तिलक्षणो धर्मः प्रजार्थिभिरुदाहृतः ।

यथोक्तं राजशार्दूल न तु तन्मोक्षकांक्षिणाम् ॥ 47

नृपश्रेष्ठ! प्रजार्थी पुरुषों ने प्रवृत्ति रूप धर्म का प्रतिपादन किया है; परन्तु वह मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले विरक्त पुरुषों के लिए अभीष्ट नहीं हैं।

य इच्छेत् पुरुषोऽत्यन्तमात्मानं निरुपद्रवम् ।

स वर्जयेत् मांसानि प्राणिनामिह सर्वशः ॥ 48

जो मनुष्य अपने आप को अत्यन्त उपद्रव रहित बनाये रखना चाहता हो, वह इस जगत् में प्राणियों के मांस का सर्वथा परित्याग कर दे।
हिंसात्मक यज्ञ का निर्णय देने का फल

श्रूयते हि पुरा कल्पे नृणां व्रीहिमयः पशुः ।

येनाजयन्त यज्वान् पुण्यलोकपरायणाः ॥ 49

सुना है, पूर्वकल्प में मनुष्यों के यज्ञ में पुरोडाश आदि के रूप में अन्नमय पशु का ही उपयोग होता था। पुण्यलोक की प्राप्ति के साधनों में लगे रहने वाले याज्ञिक पुरुष उस अन्न के द्वारा ही यज्ञ करते थे।

ऋषिभिः संशयं पृष्ठो वसुश्चेदिपतिः पुरा ।

अभ्यर्थमपि मांसं यः प्राह भक्ष्यमिति प्रभो ॥ 50

प्रभो! प्राचीन काल में ऋषियों ने, चेदिराज वसु ने अपना संदेह पूछा था। उस समय वसु ने मांस को भी जो सर्वथा अभक्ष्य है, भक्ष्य बता दिया।

आकाशादवनिं प्राप्तस्ततः स पूथिवीपतिः ।

एतदेव पुनश्चोक्त्वा विवेश धरणीतलम् ॥ 51

उस समय आकाशचारी राजा वसु अनुचित निर्णय देने के कारण आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़े। तदन्तर पृथ्वी पर भी यही निर्णय देने के कारण वे पाताल में समा गये।

इदं तु श्रृणु राजेन्द्र कीर्त्यमानं भयानघ ।

अभक्षणे सर्वसुखं मांसस्य मनुजाधिप ॥ 52

निष्पाप राजेन्द्र ! मनुजेश्वर ! मेरी कही हुई यह बात भी सुनो—मांस—भक्षण न करने से सब प्रकार का सुख मिलता है।

यस्तु वर्षशतं पूर्णं तपस्तप्येत् सुदारुणम् ।

यश्चैव वर्जयेन्मांसं सममेतन्मतं मम ॥ 53

जो मनुष्य सौ वर्षों तक कठोर तपस्या करता है तथा जो केवल मांस का परित्याग कर देता है—ये दोनों मेरी दृष्टि में एक समान हैं।

कौमुदे तु विशेषेण शुक्लपक्षे नराधिप ।

वर्जयेन्मधुमांसानि धर्मो ह्यत्र विधीयते ॥ 54

नरेश्वर ! विशेषतः शरदऋतु, शुक्लपक्ष में मद्य और मांस का सर्वथा त्याग कर दे; क्योंकि ऐसा करने में धर्म होता है।

चतुरोवार्षिकान् मासान् यो मांसं परिवर्जयेत् ।

चत्वारि भद्राण्यवाजोति कीर्तिमायुर्यशोबलम् ॥ 55

जो मनुष्य वर्षा के चार महीनों में मांस का परित्याग कर देता है, वह चार कल्याणमयी वस्तुओं—कीर्ति, आयु, यश और बल को प्राप्त कर लेता है।

अथवा मासमेकं वै सर्व मांसान्यभक्षयन् ।

अतीत्य सर्वदुःखानि सुखं जीवेन्निरामयः ॥ 56

अथवा एक महीने तक सब प्रकार के मांसों का त्याग करने वाला पुरुष सम्पूर्ण दुःखों से पार हो सुखी एवं निरोग जीवन व्यतीत करता है।

वर्जयन्ति हि मांसानि मासशः पक्षशोऽपि वा ।

तेषां हिंसानिवृत्तानां ब्रह्मलोको विधीयते ॥ 57

जो एक-एक मास अथवा एक-एक पक्ष तक मांस खाना छोड़ देते हैं, हिंसा से दूर हटे हुए उन मनुष्यों को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। (फिर जो कभी भी मांस नहीं खाते, उनके लाभ की तो कोई सीमा ही नहीं है।) मांस त्यागियों के नाम—

मांसं तु कौमुदं पक्षं वर्जितं पार्थं राजभिः ।

सर्वभूतान्तभूतस्थैर्विदितार्थपरावरैः ॥ 58

नाभाग्नान्वरीषेण गयेन च महात्मना ।

आयुनाथानरर्पयेन दिलीपरध्यपूरुषभिः ॥ 59

कार्तवीर्यानिरुद्धार्यां नहुषेण ययातिना ।

नृगेण विश्वगश्वेन तथैव शशविन्दुना ॥ 60

युवनाश्वेन च तथा शिविनौशीनरेण च ।

मुचुकुन्देन मान्धात्रा हरिश्वन्द्रेण वा विभो ॥ 61

कुन्ती नन्दन ! जिनराजाओं ने आश्विन मास के दोनों पक्ष अथवा एक पक्ष में मांस—भक्षण का निषेध किया था, वे सम्पूर्ण भूतों के आत्मरूप हो गये थे और उन्हें परावर तत्त्व का ज्ञान हो गया था। उनके नाम इस प्रकार हैं—नाभाग, अम्बरीष, महात्मागय, आयु, अनरण्य, दिलीप, रघु, पुरु, कार्तवीर्य, अनिरुद्ध, नहुष, ययाति, नृग, विश्वगश्व, शशविन्दु, युवनाश्व, उशीनरुपत्र शिर्वि, मुचुकुन्द, मान्धाता वा हरिश्वन्द्र। सत्यं वदत मासत्यं सत्यं धर्मः सनातनः ।

हरिश्वन्द्रश्वरति वै दिवि सत्येन चन्द्रवत् ॥ 62

सत्य बोलो, असत्य न बोलो, सत्य ही सनातन धर्म है। राजा हरिश्वन्द्र सत्य के प्रभाव से आकाश में चन्द्रमा के समान विचरते हैं।

श्येनचित्रेण राजेन्द्र सोमकेन वृक्तेण च ।

रैवते शीन्तदेवेन वसुना सूज्जयेन च ॥ 63

एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र कृपेण भरतेन च ।

दुष्यन्तेन करुषेण रामालकर्नरैस्तथा ॥ 64

विरुपाश्वेन निमिना जनकेन च धीमता ।

ऐलेन पृथुना चैव वीरसेनेन चैव ह ॥ 65 ॥

इक्षवाकुणा शम्भुना च श्वेतेन सगरेण च ।

अजेन धुन्धुना चैव तथैव च सुबाहुना ॥ 66

हर्यश्वेन च राजेन्द्र क्षुपेण भरतेन च ।

एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र पुरा मांसं न भक्षितम् ॥ 67

राजेन्द्र ! श्येनचित्र, सोमक, वृक, रैवत, रन्तिदेव, वसु, सूज्जय, अन्यान्य नरेश, कृप, भरत, दुष्यन्त, करुष, राम, अलर्क, नर, विरुपाश्व, निमि, बुद्धिमान् जनक, पुरुरवा, पृथु, वीरसेन, इक्षवाकु, शम्भु, श्वेतसागर, अज, धुन्धु, सुबाहु, हर्यश्व, क्षुप, भरत—इन सबने तथा अन्यान्य राजाओं ने भी कभी मांस नहीं खाया था।

ब्रह्मलोके च तिष्ठन्ति ज्वलमानाः श्रियान्विताः ।

उपास्यमाना गन्धर्वः स्त्रीसहस्रसमन्विताः ॥ १६८

वे सब नरेश अपनी कान्ति से प्रज्ज्वलित होते हुए वहाँ ब्रह्मलोक में विराज रहे हैं, गन्धर्व उनकी उपासना करते हैं और सहस्रों दिव्यांगनाएँ उन्हें घेरे रहती हैं।

तदेतदुत्तमं धर्ममहिंसाधर्मलक्षणम् ।

ये चरन्ति महात्मनो नाकपृष्ठे वसन्ति ते ॥ १६९

अतः यह अहिंसा रूप धर्म सब धर्मों से उत्तम है। जो महात्मा इसका आचरण करते हैं, वे स्वर्गलोक में निवास करते हैं।

मधु मांसं च ये नित्यं वर्जयन्तीह धर्मिकाः ।

जन्मप्रभृति मद्यं च सर्वे ते मुनयः स्मृताः ॥ १७०

जो धर्मात्मा पुरुष जन्म से ही इस जगत् में शहद, मद्य और मांस का सदा के लिए परित्याग कर देते हैं, वे सब मुनि माने गये हैं।

इमं धर्मममांसादं यश्चरेच्छावयीत वा ।

अपि चेत् सुदुराचारो न जातु निरयं ब्रजेत् ॥ ७१

जो मांस भक्षण के परित्याग रूप इस धर्म का आचरण करता अथवा इसे दूसरों को सुनाता है, वह कितना ही दुराचारी क्यों न रहा हो, नरक में नहीं पड़ता। पठेद् वा य इदं राजञ्चृण्याद् वाप्यभीक्षणः ।

अमांसभक्षणविधिं पवित्रमृषिपूजितम् ॥ ७२

विमुक्तः सर्वपापेभ्यः सर्वकामैर्महीयते ।

विशिष्टतां ज्ञातिषु च लभते नात्र संशयः ॥ ७३

राजन्! जो ऋषियों द्वारा सम्मानित एवं पवित्र इस मांस भक्षण के त्याग के प्रकरण को पढ़ता अथवा बारम्बार सुनता है, वह सब पापों से मुक्त हो सम्पूर्ण मनोवांछित भोगों द्वारा सम्मानित होता है और अपने सजातीय बन्धुओं में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है।

आपनश्चापदो मुच्येद् बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।

मुच्येतथाऽनुरो रोगाद् दुःखान्मुच्येत दुखितः ॥ ७४

इतना ही नहीं इसके श्रवण अथवा पठन से आपत्ति में पड़ा हुआ आपत्ति से, बन्धन में बँधा हुआ बन्धन से, रोगी रोग से और दुःखी दुःख से छुटकारा पा जाता है।

तिर्यग्योनिं न गच्छेत् रूपवांश्च भवेन्नरः ।

ऋद्धिमान् वै कुरुश्रेष्ठं प्राप्नुयाच्च महद् यशः ॥ ७५

कुरुश्रेष्ठ! इसके प्रभाव से मनुष्य तिर्यग्योनि में नहीं पड़ता तथा उसे सुन्दर रूप, सम्पत्ति और महान् यश की प्राप्ति होती है।

एतते कथितं राजन् मांसस्य परिवर्जने ।

प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च विधानमृषिनिर्मितम् ॥ ७६ पृ.—५८५५ से ५८६०

राजन्! यह मैंने तुम्हे ऋषियों द्वारा निर्मित मांस त्याग का विधान तथा प्रवृत्ति विषयक धर्म भी बताया है।

इमै वै मानवा लोक नृशंसा मांसगृद्धिनः ।

विसृज्य विविधान् भक्ष्यान् महारक्षोगणा इव ॥ ११

युधिष्ठिर कहते हैं—पितामह! बड़े खेद की बात है कि संसार के ये निर्दयी मनुष्य अच्छे—अच्छे खाद्य पदार्थों का परित्याग करके महान् राक्षसों के समान मांस का स्वाद लेना चाहते हैं।

अपूपान् विविधाकारांशाकानि विविधानि च ।

खण्डवान् रसयोगान् तथेच्छन्ति यथाऽमिषम् ॥ १२

भाँति—भाँति के मालपुओं, नाना प्रकार के शाकों तथा रसीली मिठाइयों की भी वैसी इच्छा नहीं रखते, जैसी रुचि मांस के लिए रखते हैं।

तदिच्छामि गुणाजश्रोतुं मांसस्याशक्षणे प्रभो ।

भक्षणे चैव ये दोषास्तांश्चैव पुरुषर्षभ ॥ १३

प्रभो! पुरुष प्रवर! अतः मैं मांस न खाने से होने वाले लाभ और उसे खाने से होने वाली हानियों को पुनः सुनना चाहता हूँ।

सर्व तत्त्वेन धर्मज्ञ यथावदिह धर्मतः ।

किं च भक्ष्यमभक्ष्यं वा सर्वमेतद् वदस्व मे ॥ १४

धर्मज्ञ पितामह! इस समय धर्म के अनुसार यथावत् रूप से यहाँ सब बातें ठीक—ठीक बताइए! इसके सिवा यह भी कहिये कि भोजन करने योग्य क्या वस्तु हैं और भोजन न करने योग्य क्या वस्तु है?

यथैतद् यद्बुशं चैव गुणा ये चास्य वर्जने ।

दोषा भक्षयतो येऽपि तन्मे बूहि पितामह ॥ १५

पितामह! मांस का जो स्वरूप है, यह जैसा है, इसका त्याग कर देने में जो लाभ है और इसे खाने वाले पुरुष को जो दोष प्राप्त होते हैं—ये सब बातें मुझे बताइए।

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत ।

विवर्जिते तु बहवो गुणाः कौरवनन्दन ।

ये भवन्ति मनुष्याणां तान् मे निगदतःशृणु ॥ १६

भीष्म जी ने कहा—महाबाहो! भरत नन्दन! तुम जैसा कहते हो ठीक वैसी ही बात है।

कौरव नन्दन! मांस न खाने में बहुत से लाभ हैं, जो वैसे मनुष्यों को सुलभ होते हैं; मैं बता रहा हूँ। सुनो

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।

नास्ति क्षुद्रतरत्समात् स नृशंसतरो नः ॥ १७

जो दूसरों के मांस से अपना मांस बढ़ाना चाहता है, उससे बढ़कर नीच और निर्दयी मनुष्य दूसरा कोई नहीं है।

न हि प्राणात् प्रियतरं लोके किंचन विद्यते ।

तस्माद् दयां नः कुर्याद् यथाऽत्मनि तथा परे ॥ १८

जगत् में अपने प्राणों से अधिक प्रिय दूसरी कोई वस्तु नहीं है, इसलिए मनुष्य जैसे अपने ऊपर दया चाहता है, उसी तरह दूसरों पर भी दया करे।

शुक्राच्च तात समूतिर्मासस्येह न संशयः । काँडा वल्लभ हि मृदु
भक्षणे तु महान् दोषो निवृत्या पुण्यमुच्यते ॥१९॥

तात! मांस भक्षण करने में महान् दोष है; क्योंकि मांस की उत्पत्ति वीर्य से होती है, इसमें संशय नहीं है। अतः उससे निवृत होने में ही पुण्य बताया गया है।
न ह्यतः सदृशं किञ्चिदिह लोके परत्र च ।

यत् सर्वेष्विष्व भूतेषु दया कौरवनन्दन ॥१०॥

कौरवनन्दन ! इस लोक और परलोक में इसके समान दूसरा कोई पुण्य कार्य नहीं है कि इस जगत् में समस्त प्राणियों पर दया की जाय।
न भयं विद्यते जातु नरस्येह दयावतः ।

दयावतामिमे लोकाः परे चापि तपस्विनाम् ॥११॥

इस जगत् में दयालु मनुष्य को कभी भय का सामना नहीं करना पड़ता।
दयालु और तपस्वी पुरुषों के लिए इहलोक और परलोक दोनों ही सुखद होते हैं।
अहिंसालक्षणो धर्म नरस्येह दयावतः। इति धर्मविदो विदुः।

यदहिंसात्मकं कर्म तत् कुर्यादात्मवान् नरः ॥१२॥

धर्मज्ञ पुरुष यह जानते हैं कि अहिंसा ही धर्म का लक्षण है। मनस्वी पुरुष वही कर्म करे, जो अहिंसात्मक हो।

अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापरः ।

अभयं तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुम् ॥१३॥

जो दया परायण पुरुष सम्पूर्ण भूतों को अभय दान देता है, उसे भी सब प्राणी अभयदान देते हैं। ऐसा हमने सुन रखा है।

क्षतं च स्खलितं चैव पतितं कृष्टमाहतम् ।

सर्वभूतानि रक्षन्ति समेषु विषमेषु च ॥१४॥

वह धायल हो, लड़-खड़ाता हो, गिर पड़ा हो, पानी के बहाव में खिंचकर बहा जाता हो, आहत हो अथवा किसी भी सम-विषम अवस्था में पड़ा हो, सब प्राणी उसकी रक्षा करते हैं।

नैनं व्यालमृगा घन्ति न पिशाचा च राक्षसाः ।

मुच्यते भयकालेषु मोक्षयेद् यो भये परान् ॥१५॥

जो दूसरों को भय से छुड़ाता है, उसे न हिंसक पशु मारते हैं और न पिशाच तथा राक्षस ही उस पर प्रहार करते हैं। वह भय का अवसर आने पर उससे मुक्त हो जाता है।

प्राणदानात् परं दानं नभूतं न भविष्यति ।

न ह्यात्मनः प्रियतरः किञ्चिदस्तीह निश्चितम् ॥१६॥

प्राण दान से बढ़कर दूसरा कोई दान न हुआ है और न होगा। अपने आत्मा से बढ़कर प्रियतर वस्तु दूसरी कोई नहीं है। यह निश्चित बात है।

अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं नाम भारत ।

मृत्युकाले हि भूतानां सद्यो जायति वैपथुः ॥१७॥

भरतनन्दन ! किसी भी प्राणी को मृत्यु अभीष्ट नहीं है; क्योंकि मृत्यु-काल में सभी प्राणियों का शरीर तुरन्त कॉप उठता है।

जातिजन्मजरादुःखैनित्यं संसार सागरे ।

जन्तवः परिवर्तन्ते मरणादुद्विजन्ति च ॥१८॥ पृ.५८६०

इस संसार समुद्र में समस्त प्राणी सदा गर्भवास, जन्म और बुद्धापा आदि के दुःखों से दुःखी होकर चारों ओर भटकते रहते हैं। साथ ही मृत्यु के भय से उद्धिन रहा करते हैं।

नात्मोऽस्ति प्रियतरः पृथिवीमनुसृत्य ह ।

तस्मात् प्राणिषु सर्वेषु दयावानात्मवान् भवेत् ॥२२॥

इस भूमण्डल पर अपनी आत्मा से बढ़कर कोई प्रिय वस्तु नहीं है, इसलिए सब प्राणियों पर दया करें और सबको अपनी आत्मा ही समझें।

सर्वमांसानि यो राजन् यावज्जीवं न भक्षयेत् ।

स्वर्गे स विपुलं स्थानं प्राप्नुयात्रात्र संशयः ॥२३॥ पृ.५८६१

राजन् ! जो जीवन भर किसी प्राणी का मांस नहीं खाता, वह स्वर्ग में श्रेष्ठ एवं विशाल स्थान पाता है, इसमें संशय नहीं है।

हिंसा और मांस भक्षण की घोर निन्दा

चतुर्विधेयं निर्दिष्टा ह्यहिंसा ब्रह्मवादिभिः ।

एकैकतोऽपि विभ्रष्टा न भवत्यरिसूदन ॥४॥

भीम जी ने कहा—शत्रुसूदन! ब्रह्मवादी पुरुषों ने (मन से, वाणी से तथा कर्म से हिंसा न करना एवं मांस न खाना—इन) चार उपायों से अहिंसा धर्म का पालन बतलाया है, इनमें से किसी एक अंश की भी कमी रह गयी तो अहिंसा-धर्म का पूर्णतः पालन नहीं होता।

यथा सर्वश्चतुष्पाद् वै त्रिभिः पादैर्न तिष्ठति ।

तथैवेयं महीपाल कारणः प्रोच्यते त्रिभिः ॥५॥

महीपाल! जैसे चार पैरों वाला पशु तीन पैरों से खड़ा नहीं रह सकता, उसी प्रकार केवल तीन ही कारणों से पालित हुई अहिंसा पूर्णतः अहिंसा नहीं कही जा सकती।

यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पदगामिनाम् ।

सर्वाण्येवापिधीयन्ते पदजातानि कौञ्जरे ॥६॥

एवं लोकेष्वहिंसा तु निर्दिष्टा धर्मतःपुरा ।

कर्मणा लिप्यते जन्तुर्वाचा च मनसापि च ॥७॥

जैसे हाथी के पैर के चिह्न में सभी पदगामी प्राणियों के पदचिह्न समा जाते हैं, उसी प्रकार पूर्वकाल में इस जगत् के भीतर धर्मतः अहिंसा का निर्देश किया गया है अर्थात् अहिंसा धर्म में सभी धर्मों का समावेश हो जाता है। ऐसा माना गया है।

पूर्वं तु मनसा त्यक्त्वा तथा वाचाथ कर्मणा ।

न भक्षयति यो मांसं त्रिविधं स विमुच्यते ॥८॥

जीव मन, वाणी और क्रिया के द्वारा हिंसा के दोष से लिप्त होता है किन्तु जो क्रमशः पहले मन से, फिर वाणी से और फिर क्रिया द्वारा हिंसा का त्याग करके कभी मांस नहीं खाता, वह पूर्वोक्त तीनों प्रकार की हिंसा के दोष से भी मुक्त हो जाता है।

त्रिकारणं तु निर्दिष्टं श्रूयते ब्रह्मवादिभिः ।

मनो वाचि तथाऽस्वादे दोषाह्येषु प्रतिष्ठिताः ॥ १९

ब्रह्मवादी महात्माओं ने हिंसादोष के प्रधान तीन कारण बतलाये हैं। मन (मांस खाने की इच्छा), वाणी (मांस खाने का उपदेश) और आस्वाद (प्रत्यक्ष रूप में मांस का स्वाद लेना) ये तीनों ही हिंसा-दोष के आधार हैं।

न भक्षयन्त्यतो मांसं तपोयुक्ता मनीषिणः ।

दोषांस्तु भक्षणे राजन् मांसस्येह निवोध मे ॥ १०

इसलिए तपस्या में लगे हुए मनीषी पुरुष कभी मांस नहीं खाते हैं। राजन्! अब मैं मांस-भक्षण में जो दाष्ट है, उनका यहाँ बता रहा हूँ। सुनो।

पुत्रमांसोपमं जानन् खादते योऽविचक्षणः ।

मांसं मोहसमायुक्तः पुरुषः सोऽधमः स्मृतः ॥ ११

जो मूर्ख यह जानते हुये भी कि पुत्र के मांस में और दूसरे साधारण मांसों में कोई अन्तर नहीं है, मोहवश मांस खाता है, वह नराधम है।

पितृमातृसमायोगे पुत्रत्वं जायते यथा ।

हिंसां कृत्वावशः पापो भूयिष्ठं जायते तथा ॥ १२

जैसे माता और पिता के संयोग से पुत्र की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार हिंसा करने से पापी पुरुष को विवश होकर बारम्बार पाप-योनि में जन्म लेना पड़ता है।

रसं च प्रतिजिह्वायजिह्वाया ज्ञानं प्रज्ञायते यथा ।

तथा शास्त्रेषु नियतं रागो ह्यास्वादिताद् भवेत् ॥ १३

जैसे जीभ से जब रस का ज्ञान होता है, तब उसके प्रति वह आकृष्ट होने लगती है, उसी प्रकार मांस का आस्वादन करने पर उसके प्रति आसक्ति बढ़ती है। शास्त्रों में भी कहा है कि विषयों के आस्वादन से उनके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है।

संस्कृतासंस्कृतः पक्वा लवणालवणास्तथा ।

प्रजायन्ते यथा भावास्तथा चिंतं निरुद्धयते ॥ १४

संस्कृत (मसाले आदि डालकर संस्कृत किया हुआ) असंस्कृत (मसाला आदि के संस्कार से रहित), पक्व, केवल नमक मिला हुआ और अलोना—ये मांस की जो—जो अवस्थाएँ होती हैं, उन्हीं—उन्हीं में रुचि—भैद से मांसाहारी मनुष्य का चित्त आसक्त होता है।

भेरी मृदगशब्दांश्च तन्त्रीशब्दांश्च पुष्कलान् ।

निषेविष्यन्ति वै मन्दा मांसमक्षाः कथं नराः ॥ १५

मांसभक्षी मूर्ख मनुष्य स्वर्ग में पूर्णतः सुलभ होने वाले भेरी, मृदंग और वाणी के दिव्य मधुर शब्दों का कैसे श्रवण कर सकते; क्योंकि वे स्वर्ग में नहीं जा सकते।

परेषां धनधान्यानां हिंसकास्तावकास्तथा ।

प्रशंसकाश्च मांसस्य नित्यं स्वर्गं बहिष्कृतः ॥

दूसरों के धन-धान्य को नष्ट करने वाले तथा मांस भक्षण की स्तुति प्रशंसा करने वाले मनुष्य सदा ही स्वर्ग से बहिष्कृत होते हैं।

अचिन्तितमनिर्दिष्टमसंकल्पितमेव च ।

रसगृद्धयाभिभूता ये प्रशंसन्ति फलार्थिनः ॥ १६

जो मांस के रस में होने वाली आसक्ति से अभिभूत होकर उसी अभीष्ट फल मांस की अभिलाषा रखते हैं तथा उसके बारम्बार गुण गाते हैं, उन्हें ऐसी दुर्गति प्राप्त होती है, जो कभी चिन्तन में नहीं आयी है। जिसका वाणी द्वारा कहीं निर्देश नहीं किया गया है तथा जो कभी मन की कल्पना में भी नहीं आयी है।

भस्म विष्ठा कृमिवापि निष्ठा यस्येदृशी ध्रुवा ।

स कायः परपीडाभिः कथं धार्यो विपश्चिता ॥

प्रशंसा ह्येव मांसस्य दोषकर्मफलान्विता ॥ १७

जो मृत्यु के पश्चात् चिता पर जला देने से भस्म हो जाता है, या यों ही फेंक देने से जिसमें किंडे पड़ जाते हैं—इन तीनों में से यह एक नए परिणाम जिसके लिए सुनिश्चित है, उस शरीर को विद्वान् पुरुष दूसरों को पीड़ा देकर उसके मांस से कैसे पौष्ण कर सकता है? मांस की प्रशंसा भी पापमय कर्मफल से सम्बन्ध कर देती है।

जीवितं हि परित्यज्य बहवः साधवो जनाः ।

स्वमांसैः परमांसानि परिपाल्य दिवं गताः ॥ १८

उशीनर शिवि, आदि बहुत—से श्रेष्ठ पुरुष दूसरों की रक्षा के लिए अपने प्राण देकर, अपने मांस से दूसरों के मांस की रक्षा करके स्वर्गलोक में गये हैं।

एवमेषा महाराज चतुर्भिः कारणैर्वृता ।

अहिंसा तव निर्दिष्टा सर्वधर्मनुसंहिता ॥ १९ पृ.५८५३—५८५५

महाराज! इस प्रकार चार उपायों से जिसका पालन होता है, उस अहिंसा धर्म का तुम्हारे लिए प्रतिपादन किया गया। यह सम्पूर्ण धर्मों में ओत-प्रोत है। लोभाद् वा बुद्धिमोहाद् वा बलवीर्यमेव च ।

संसर्गादिथ पापानामधर्मरूपचिता नृणाम् ॥ ३३

लोभ से, बुद्धि के मोह से, बल-वीर्य की प्राप्ति के लिए अथवा पापियों के संसर्ग में आने से मनुष्यों की अधर्म में रुचि हो जाती है।

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।

उद्विग्नवासो वसीत यत्र यत्राभिजायते ॥ ३४

जो दूसरों के मांस से अपना मांस बढ़ाना चाहता है, वह जहाँ कहीं भी जन्म लेता है, चैन से नहीं रहने पाता है।

यो हि खादति मांसानि प्राणिनां जीवितैषिणाम् ।

हतानां वा मृतानां वा यथा हन्ता तथैव सः ॥ ३७

जो जीवित रहने की इच्छा वाले प्राणियों को मारकर अथवा उनके स्वयं मर जाने पर उनका मांस खाता है, वह न मारने पर भी उन प्राणियों का हत्यारा ही समझा जाता है।

धनेन क्रयिको हन्ति खादकश्चोपभोगतः ।

धातको वधबन्धाम्यामित्येष त्रिविधो वधः ॥ ३८

खरीदने वाला धन के द्वारा, खाने वाला उपभोग के द्वारा और घातक वध एवं बन्धन के द्वारा पशुओं की हिंसा करता है। इस प्रकार यह तीन प्रकार से प्राणियों का बन्ध होता है।

अखादन्मोदंदंश्च भावदोषेण मानवः ।

योऽनुमोदति हन्यन्तं सोऽपि दोषेण लिप्यते ॥ ३९

जो मांस को स्वयं नहीं खाता तथा खाने वाले का अनुमोदन करता है, वह मनुष्य भी भावदोष के कारण मांस भक्षण के पाप का भागी होता है। इसी प्रकार जो मारने वाले का अनुमोदन करता है, वह भी हिंसा के दोष से लिप्त होता है।

खादकस्य कृते जन्मून् यो हन्यात् पुरुषाधमः ।

महादोषतरस्तत्र घातको न तु खादकः ॥ ४२

जो मांस खाने वालों के लिये पशुओं की हत्या करता है, वह मनुष्यों में अधम है। घातक को बहुत भारी दोष लगता है। मांस खाने वाले को उतना दोष नहीं लगता।

इज्यायज्ञश्रुतिकृतैर्यो मार्गेरबुद्धोऽधमः ।

हन्याज्जन्तून् मांसगृध्नुः स वै नरकभाङ्गनः ॥ ४३

जो मांस लोभी मूखे एवं अधम मनुष्य यज्ञ-योग आदि वैदिक मार्गों के नाम पर प्राणियों की हिंसा करता है, वह नरकगामी होता है।

आहर्ता चानुमन्ता च विशस्ता क्रयविक्रयी ।

संस्कर्ता चोपभोक्ता च खादकाः सर्व एव ते ॥ ४५

जो मनुष्य हत्या के लिए पशु लाता है, जो उसे मारने की अनुमति देता है, जो उसका वध करता है तथा जो खरीदता, बेचता, पकाता और खाता है, वे सब के सब खाने वाले ही माने जाते हैं अर्थात् वे सब खाने वाले के समान ही पाप के भागी होते हैं।

मांस भक्षण का फल

जाताश्चाय्वप्वास्तत्र च्छिमानाः पुनः—पुनः ।

पाच्यमानाश्च दृश्यन्ते विवशा मांसगृद्धिनः ॥ २०

मांस लोलूप जीव जन्म लेने पर भी परवश होते हैं। वे बार—बार शस्त्रों से काटे और पकाये जाते हैं। उनकी यह बेबसी प्रत्यक्ष देखी जाती है।

कुम्भीपाके च पच्यन्ते तां तां योनिमुपागताः ।

आक्रम्य मार्यमाणाश्च भ्रामयन्ते वै पुनः पुनः ॥ २१

वे अपने पापों के कारण कुम्भीपाक नरक में रोधें जाते और भिन्न—भिन्न योनियों में जन्म लेकर गला घोंट—घोंट कर मारे जाते हैं। इस प्रकार उन्हें बारम्बार संसार चक्र में भटकना पड़ता है।

ये भक्षयन्ति मांसानि भूतानां जीवितैषिणाम् ।

भक्षयन्ते तेऽपि भूतैस्तैरिति मे नास्ति संशयः ॥ २४

जो जीवित रहने की इच्छा वाले प्राणियों के मांस को खाते हैं, वे दूसरे जन्म में उन्हीं प्राणियों द्वारा भक्षण किये जाते हैं। इस विषय में मुझे संशय नहीं है।

मांस भक्षयते यस्माद् भक्षयिष्ये तमप्यहम् ।

एतन्मांसस्य मांसत्वमनुबुद्धयस्व भारत ॥ २५

भरतनन्दन! (जिसका वध किया जाता है, वह प्राणी कहता है) — 'मां स भक्षयते यस्माद् भक्षयिष्ये तमप्यहम्'। अर्थात् 'आज मुझे वह खाता है, तो कभी मैं भी उसे खाऊंगा'। यही मांस का मांसत्व है— इसे ही मांस शब्द का तात्पर्य समझो।

घातको वध्यते नित्यं तथा वध्यति भक्षिता ।

आक्रोष्टा क्रुद्यते राजंस्तथा द्वैष्ट्वमान्तुते ॥ २६

राजन् ! इस जन्म में जिस जीव की हिंसा होती है, वह दूसरे जन्म में सदा ही अपने घातक का वध करता है। फिर भक्षण करने वाले को भी मार डालता है। जो दूसरों की निन्दा करता है, वह स्वयं भी दूसरों के क्रोध और द्वेष का पात्र होता है।

येन येन शरीरेण यद् यत् कर्म करोति यः ।

तेन तेन शरीरेण तत्तत् फलमुपाशनुते ॥ २७

जो जिस—जिस शरीर से जो—जो कर्म करता है, वह उस—उस शरीर से भी उस—उस कर्म का फल भोगता है।

विभिन्न ग्रन्थों में हिंसा एवं अहिंसा का वर्णन

1. यो नः कर्शिवद् रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः ।

स्वैः ष एवै रिरिषीष्ठ युर्जनः । ऋग्वेद—(८/१८/१३)

जो व्यक्ति किसी को राक्षस भाव (दुर्भाव) से नष्ट करना चाहता है, वह स्वयं अपने ही पापकर्मों से नष्ट हो जाता है, अपदस्थ हो जाता है।

2. मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः ॥ यजुर्वेद—(१२/३२)

तू अपने शरीर से किसी को भी पीड़ित न कर।

3. मा हिंसीः पुरुषं जगत् ॥ यजुर्वेद—(१६/३)

मनुष्य और जंगम (गाय, भैंस आदि) पशुओं की हिंसा न करो।

4. कर्विदं वो न दभायत् स्वधावान् । अथर्ववेद—(४/१/७)

क्रान्तदर्शी श्रेष्ठ ज्ञानी ऐश्वर्य से समृद्ध होकर भी किसी को पीड़ा नहीं देते हैं, सब पर अनुग्रह ही करते हैं।

5. मूर्णा मृगस्य दन्ता । अथर्ववेद—(४/३/६)

हिंसा व्याघ्र आदि के दाँत मूढ़ हो जायें, भक्षण करने में असमर्थ हो जायें अर्थात् अत्याचारी लोगों की संहारक शक्ति कुपित हो जाये।

6. संग्रामो वैकूरम् । संग्रामे हि कूरुं कियते । ब्राह्मण सा—१/२/५/१६

युद्ध कूर होता है। युद्ध में कूर का काम किये जाते हैं।

7. नान्योऽन्यं हिंस्याताम् । ब्राह्मण सा—३/४/१/२४

परस्पर एक दूसरे को हिंसित अर्थात् पीड़ित नहीं करना चाहिए।

8. असुर्या नाम ते लोका,

अन्धेत तमसावृताः ।

ताँसते प्रेत्याभिगच्छन्ति,

ये केवात्महनो जनाः ॥ १ उपनिषद् सा—३

जो मनुष्य आत्मा का हनन करते हैं, त्याग पूर्वक भोग नहीं करते हैं, वे गहरे अन्धकार से आवृत असुर्य—लोक में जाते हैं।

9. अहिंसा परमो धर्मः सर्वप्राणभूतां वरः । महाभारत—११/१३

समस्त प्राणियों के लिये अहिंसा सबसे उत्तम धर्म है।

10. अहिंसाको ज्ञानतृप्तः स ब्रह्मासनमर्हति । महाभारत—१८९/६

जो अहिंसक है और ज्ञान—विज्ञान से तृप्त है, वही ब्रह्मा के आसन पर बैठने का अधिकारी होता है।

11. यस्मात्रोद्विजते लोको लोकात्रोद्विजते च यः ।

हर्षामर्षभयोद्वैरमुक्तो यः स च मे प्रियः । भ.गीता—१२/१५

जो न किसी दूसरे प्राणी को उद्विग्न करता है और न स्वयं ही किसी अन्य से उद्विग्न होता है, जो हर्ष—शोक से तथा भय और उद्वेग से मुक्त है, वह भक्त मुझको प्रिय है।

12. अहिंसैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् । मनुस्मृति २/१५

अहिंसा की भावना से अनुप्राप्ति रहकर ही प्राणियों पर अनुशासन करना चाहिये।

13. अलाभे न विषादी स्याल्लभे चैव न हर्षयेत् । मनुस्मृति—६/५७

अलाभ (इच्छित वस्तु न मिलने पर) में शोकाकुल नहीं होना चाहिये और लाभ में अधिक फूल उठना नहीं चाहिये।

14. दुष्टं हिंसायाम् । सूक्तिकण—६—१—१५

हिंसा के कारण अच्छा से अच्छा साधन भी दुष्ट (मलिन) हो जाता है।

15. अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः । सूक्तिकण—२/३५

अहिंसा की प्रतिष्ठा (पूर्ण स्थिति) होने पर उसके सान्निध्य में सब प्राणी निर्वर हो जाते हैं।

16. स्वर्गः सत्त्वगुणोदयः । सूक्तिकण—११/१९/४२

सत्त्वगुण की वृद्धि ही स्वर्ग है। सूक्ति त्रिवेणी

हिंसा एवं असत्य का भयावह परिणाम

स्वास्तिकावती नाम की एक सुन्दर नगरी थी। उसके राजा का नाम विश्वावसु था। विश्वावसु की रानी श्रीमती थी। उसके एक वसु नाम का पुत्र था।

वहीं एक क्षीरकदम्ब उपाध्याय रहते थे। वे बड़े सुचरित्र और सरल—स्वभावी थे। जिन भगवान् के वे भक्त थे और होम, शान्ति—विधान आदि जैन क्रियाओं द्वारा गृहस्थों के लिये शान्ति—सुखार्थ अनुष्ठान करना उनका काम था। उनकी स्त्री का नाम स्वस्तिमती था। उसके पर्वत नाम का एक पुत्र था। भाग्य से वह पापी और दुर्व्यसनी हुआ। कर्मों की कैसी विचित्र स्थिति है कि पिता कितना धर्मात्मा और सरल और उसका पुत्र दुराचारी। इसी समय एक विदेशी ब्राह्मण नारद, जो कि निरभिमानी और सच्चा जिन भक्त था, क्षीरकदम्ब के पास पढ़ने के लिये आया। राजकुमार वसु, पर्वत और नारद ये तीनों एक साथ पढ़ने लगे। वसु और नारद की बुद्धि अच्छी थी, सो वे तो थोड़े ही समय में अच्छे विद्वान् हो गये। रहा पर्वत सो एक तो उसकी बुद्धि ही खराब, उस पर पाप के उदय से उसे कुछ नहीं आता—जाता था। अपने पुत्र की यह हालत देखकर उसकी माता ने एक दिन अपने पति से गुस्सा होकर कहा—जान पड़ता है, आप बाहर के लड़कों को तो अच्छी तरह पढ़ाते हैं और विशेष अपने पुत्र पर आपका ध्यान नहीं है—उसे आप अच्छी तरह नहीं पढ़ाते। इसलिये उसे इतने दिन तक पढ़ते रहने पर भी कुछ नहीं आया। क्षीरकदम्ब ने कहा—इसमें मेरा कुछ दोष नहीं है। मैं तो सबके साथ एक सा ही श्रम करता हूँ। तुम्हारा पुत्र ही मूर्ख है, पापी है, वह कुछ समझता ही नहीं। बोलो, अब इसके लिए मैं क्या करूँ? स्वस्तिमती को इस बात पर विश्वास हो, इसलिये उसने तीनों शिष्यों को बुलाकर कहा—पुत्रों, देखो तुम्हें एक—एक पाई दी जाती है, इसे लेकर तुम बाजार जाओ और अपने बुद्धिबल से इसके द्वारा चने लेकर खाओ और पाई पीछे वापिस भी लौटा लाओ। तीनों गये। उनमें पर्वत एक जगह से चने मोल लेकर और वहीं खा—पीकर सूने हाथ घर लौट आया। अब रहे वसु और नारद, सो उन्होंने पहले तो चने मोल लिये और फिर उन्हें इधर—उधर घुमकर बेचा, जब उनकी पाई वसूल हो गई तब बाकी बचे चनों को खाकर वे लौट आये। आकर उन्होंने गुरुजी की अमानत उन्हें वापिस सौंप दी। इसके बाद क्षीरकदम्ब ने एक दिन तीनों को आटे के बने हुए तीन बकरे देकर उनसे कहा—देखो, उन्हें ले जाकर और जहाँ कोई न देख पाये ऐसे एकान्त स्थान में इनके कानों को छेद लाओ। गुरु की आज्ञानुसार तीनों निर इस नये काम में लग गये। पर्वत ने तो एक जंगल में जाकर बकरे का कान छेद डाला। वसु और नारद बहुत जगह गये, सर्वत्र उन्होंने एकान्त स्थान ढूँढ़ डाला, पर उन्हें कहीं उनके मन लायक स्थान नहीं मिला अथवा यों कहिये कि उनके विचारानुसार एकान्त स्थान कोई था ही नहीं। वे जहाँ पहुँचते और मन में विचार करते वहीं उन्हें चन्द्र, सूर्य, तारा, देव, व्यन्तर, पशु, पक्षी और अवधिज्ञानी मुनि आदि जान पड़ते। वे उस समय यह विचार कर कि ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ कोई न देखता हो, वापिस घर लौट आये। उन्होंने उन बकरों के कानों को नहीं छेदा। आकार उन्होंने गुरु जी को नमस्कार किया और अपना सब हाल उनसे कह सुनाया। सच है—बुद्धि कर्म के अनुसार ही हुआ करती है। उनकी बुद्धि की इस प्रकार चतुरता देखकर उपाध्यायजी ने अपनी प्रिया से कहा—क्यों देखी सबकी बुद्धि और चतुरता? अब कहो दोष मेरा या पर्वत के भाग्य का?

एक दिन की बात है कि वसु से कोई ऐसा अपराध बन गया, जिससे उपाध्याय ने उसे बहुत मारा। उस समय स्वस्तिमती ने बीच में पड़कर वसु को बचा लिया। वसु ने

अपनी बचाने वाली गुरुमाता से कहा—माता, तुमने मुझे बचाया इससे बड़ा उपकृत हुआ। कहो तुम्हें क्या चाहिये? वही लाकर मैं तुम्हें प्रदान करूँ। स्वस्तिमती ने उत्तर में राजकुमार से कहा—पुत्र, इस समय तो मुझे कुछ आवश्यकता नहीं है, पर जब होगी तब माँगूँगी। तू मेरे इस वर को अभी अपने पास ही रख।

एक दिन क्षीरकदम्ब के मन में प्रकृति की शोभा देखने के लिये उत्कंठा हुई। वह अपने साथ तीनों शिष्यों को भी इसलिये लिवा ले गये कि उन्हें वहीं पाठ भी पढ़ा देंगा। वह एक सुन्दर बगीचे में पहुँचे। वहाँ कोई अच्छा पवित्र स्थान देखकर वे अपने शिष्यों को बृहदारण्य का पाठ पढ़ाने लगे। वहीं और दो ऋद्धिधारी महामुनि स्वाध्याय कर रहे थे। उनमें से छोटे मुनि ने क्षीरकदम्ब को पाठ पढ़ाते देखकर बड़े मुनीराज से कहा—प्रभो, देखिए कैसे पवित्र स्थान में उपाध्याय अपने शिष्यों को पढ़ा रहे हैं। गुरु ने कहा—अच्छा है, पर देखो, इनमें से दो तो पुण्यात्मा हैं और वे स्वर्ग में जायेंगे और दो पाप के उदय से नकों के दुःख सहेंगे। सच है—

कर्मों के उदय से जीवों को सुख या दुःख भोगना ही पड़ता है। मुनि के वचन क्षीरकदम्ब ने सुन लिए। वह अपने विद्यार्थियों को घर भेजकर मुनिराज के पास गये। उन्हें नमस्कार कर उसने पूछा—हे भगवन! हे जैन सिद्धान्त के उत्तम विद्वान्! कूपाकर मुझे कहिए कि हम में से कौन दो तो स्वर्ग जाकर सुखी होंगे और कौन दो नक्क जायेंगे? काम के शत्रु मुनिराज ने क्षीरकदम्ब से कहा—भव्य, स्वर्ग जाने वालों में एक तो तू जिनभक्त और दूसरा धर्मात्मा नारद है और वसु तथा पर्वत पाप के उदय से नक्क जायेंगे। क्षीरकदम्ब मुनिराज को नमस्कार कर अपने घर आया। उसे इस बात का बड़ा दुःख हुआ कि उसका पुत्र नरक में जायेगा क्योंकि मुनियों का कहा अनन्तकाल में भी झूठा नहीं होता।

एक दिन कोई ऐसा कारण दीख पड़ा, जिससे वसु के पिता विश्वावसु अपना राज—काज वसु को सौंपकर आप साधु हो गये। राज्य अब वसु करने लगा। एक दिन वसु वन—विहार के लिए उपवन में गया हुआ था। वहीं उसने आकाश से लुढ़क कर गिरते एक पक्षी को देखा। देखकर उसे आश्चर्य हुआ। उसने सोचा पक्षी के लुढ़कते हुए गिरने का कोई कारण यहाँ अवश्य होना चाहिए। उसकी शोध लगाने को जिधर से पक्षी गिरा था उधर ही लक्ष्य बौद्धकर उसने बाण छोड़ा। उसका लक्ष्य व्यर्थ न गया। यद्यपि उसे यह नहीं जान पड़ा कि क्या गिरा, पर इतना उसे विश्वास हो गया कि उसके बाण के साथ ही कोई भारी वस्तु गिरी जरूर है। जिधर से किसी वस्तु के गिरने की आवाज उसे सुन पड़ी थी वह उधर ही गया पर तब भी उसे कुछ नहीं देख पड़ा। यह देख उसने उस भाग को हाथों से टोटोलना शुरू किया। हस्तस्पर्श से उसे एक निर्मल खम्भा, जो कि स्फटिक—मणि का बना था, जान पड़ा। वसुराजा उसे गुप्तरीति से अपने महल पर ले आया। वसु ने खम्भे के चार पाये बनवाये और न्याय—सिंहासन लिए के लगवा दिये। उन पायों के लगाने से सिंहासन ऐसा जान पड़ने लगा मानो वह आकाश में ठहरा हुआ हो। धूर्त वसु अब उसी पर बैठकर राज्यशासन करने लगा। उसने सब जगह यह प्रगट कर दिया कि “राजा वसु बड़ा ही सत्यवादी है, उसकी सत्यता के प्रभाव से उसका न्यायसिंहासन आकाश में ठहरा हुआ है।” इस प्रकार कपट की आड में वह अब सर्वसाधारण के बहुत ही आदर का पात्र हो गया। सच है—मायावी पुरुष संसार में क्या ठगाई नहीं करते। इधर सम्यग्दृष्टि, जिनभक्त क्षीरकदम्ब संसार से विरक्त होकर तपस्वी हो गया और अपनी शक्ति के अनुसार तपस्या कर अन्त में समाधिमरण द्वारा उसने स्वर्ग लाभ किया। पिता का उपाध्याय पद अब पर्वत को

मिला। पर्वत को जितनी बुद्धि थी, जितना ज्ञान था, उसके अनुकूल वह पिता के विद्यार्थियों को पढ़ाने लगा। उसी वृत्ति के द्वारा उसका निर्वाह होता था। क्षीरकदम्ब के साधु हुए बाद ही नारद भी वहाँ से अन्यत्र चल दिया। वर्षों तक नारद विदेशों में घूमा फिरा। घूमते—फिरते वह फिर भी एक बार स्वस्तिकापुरी की ओर आ निकला। वह अपने सहाध्यायी और गुरुपुत्र पर्वत से मिलने को गया। पर्वत उस समय अपने शिष्यों को पढ़ा रहा था। साधारण कुशल प्रश्न के बाद नारद वहाँ बैठ गया और पर्वत का अध्यापन कार्य देखने लगा। प्रकरण कर्मकाण्ड का था। वहाँ एक श्रुति थी—“अजैर्यष्टव्यमिति” दुराग्रही पापी पर्वत ने उसका अर्थ किया कि “अजैश्छागैः प्रयष्टव्यमिती” अर्थात्—बकरों की बली देकर होम करना चाहिये। उससे बाधा देकर नारद ने कहा—नहीं, इस श्रुती का यह अर्थ नहीं है। गुरुजी ने तो हमें इसका बतलाया था कि अजैस्त्रिवाषिकैर्धान्यैः प्रयष्टव्यम् अर्थात्—तीन वर्ष के पुराने धान से, जिसमें उत्पन्न होने की शक्ति न हो, होम करना चाहिए। पापी, तू यह क्या अनर्थ करता है जो उलटा ही अर्थ कर दिया? उस पर पापी पर्वत ने दुराग्रह के वश हो यही कहा कि नहीं तुम्हारा कहना सर्वथा मिथ्या है। असल से “अज” शब्द का अर्थ बकरा ही होता है और उसी से होम करना चाहिए। ठीक कहा है—

जिसे दुर्गति में जाना होता है, वही पुरुष जानकर भी ऐसा झूठ बोलता है। तब दोनों में सच्चा कौन है, इसके निर्णय के लिए उन्होंने राजा वसु को मध्यस्थ चुना। उन्होंने परस्पर में प्रतिज्ञा की कि जिसका कहना झूठ हो उसकी जबान काट दी जाय। पर्वत की माँ को जब इस विवाद का और परस्पर की प्रतिज्ञा का हाल मालूम हुआ तब उसने पर्वत को बुलाकर बहुत डॉंटा और गुस्से में आकर कहा—पापी, तूने यह क्यों अनर्थ किया? क्यों उस श्रुती का उलटा अर्थ किया? तुझे नहीं मालूम कि तेरा पिता जैनधर्म का पूर्ण श्रद्धानी था और वह अजैर्यष्टव्यम् इसका अर्थ तीन वर्ष के पुराने धान से होम करने का करता था और स्वयं भी वह पुराने धान से ही सदा होमादिक किया करता था। स्वस्तिमती ने उसे ओर भी बहुत फटकारा, पर उसका फल कुछ नहीं निकला। पर्वत अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ बना रहा। पुत्र का इस प्रकार का दुराग्रह देखकर वह अधीर हो उठी। एक और पुत्र के अन्याय पक्ष का समर्थन होकर सत्य की हत्या होती है और दूसरी ओर पुत्र—प्रेम उसे अपने कर्तव्य से विचलित करता है। अब वह क्या करे? पुत्र प्रेम में फंसकर सत्य की हत्या करे या उसकी रक्षाकर अपना कर्तव्य पालन करे? वह बड़े संकट में पड़ी। आखिर दोनों शक्तियों का युद्ध पुत्र—प्रेम ने विजय प्राप्त कर उसे अपने कर्तव्य पथ से गिरा दिया—सत्य की हत्या करने को उसे सन्नद्ध किया। वह उसी समय वसु के पास पहुँची और बोली—पुत्र—तुम्हें याद होगा कि मेरा एक बर तुमसे पाना बाकी है। आज उसकी मुझे कृतार्थ करो। बात यह है—पर्वत और नारद का किसी विषय पर झांगड़ा हो गया है। उसके निर्णय के लिये उन्होंने तुम्हें मध्यस्थ चुना है। इसलिए मैं तुम्हें कहनें को आई हूँ कि तुम पर्वत के पक्ष का समर्थन करना। सच हैं—जो स्वयं पापी होते हैं वे दूसरों को भी पापी बना डालते हैं। जैसे सर्प स्वयं जहरीला होता है और जिसे काटता है उसे भी विषयुक्त कर देता है। पापियों का यह स्वभाव ही होता है।

राजसभा लगी हुई थी। बड़े—बड़े कर्मचारी यथा स्थान बैठे हुए थे। राजा वसु भी एक सुन्दर रत्न जडे सिंहासन पर बैठा हुआ था। इतने में पर्वत और नारद अपना न्याय कराने के लिए राजसभा में आये। दोनों अपना न्याय कराने के लिए अपना—अपना कथन सुनाकर अन्त में किसका कहना सत्य है और गुरुजी ने अपने

का अजैर्यष्टव्यम् इसका क्या अर्थ समझाया था, इसका खुलासा करने का भार वसु पर छोड़ दिया। वसु उक्त वाक्य का ठीक अर्थ जानता था और यदि वह चाहता तो सत्य की रक्षा कर सकता था, पर उसे अपनी गुरुआणीजी के मारे हुए वर ने सत्यमार्ग से ढकेल कर आग्रही और पक्षपाती बना दिया। मिथ्या आग्रह के वश हो उसने अपनी मानमर्यादा और प्रतिष्ठा की कुछ परवाहन कर नारद के विरुद्ध फैसला कर दिया। उसने कहा कि जो पर्वत कहता है वही सत्य है और गुरुजी ने हमें ऐसा ही समझाया था कि अजैर्यष्टव्यम् इसका अर्थ बकरों को मारकर उनसे होम करना चाहिए। प्रकृति को यह महा अन्याय सहन नहीं हुआ। उसका परिणाम यह हुआ कि राजा वसु जिस स्फटिक के सिंहासन पर बैठकर प्रतिदिन राजकार्य करता था और लोगों को यह कहा करता था कि मेरे सत्य के प्रभाव से मेरा सिंहासन आकाश में ठहरा हुआ है, वही सिंहासन वसु की असत्यता से टूट पड़ा और पृथ्वी में घुस गया। उसके साथ ही वसु भी पृथ्वी में जा धसा। यह देख नारद ने उस समझाया—महाराज, अब भी सत्य—सत्य कह दीजिए, गुरुजी ने जैसा अर्थ कहा था—वह प्रगट कर दीजिए। अभी कुछ नहीं गया। सत्यव्रत आपकी इस संकट से अवश्य रक्षा करेगा। कुगति में व्यर्थ अपनी आत्मा को न ले जाइए। अपनी इस पर दुर्दशा पर भी वसु को दया नहीं आई। वह और जोश में आकर बोला—नहीं, जो पर्वत कहता है वही सत्य है। इतना उसका कहना था कि उसके पाप के उदय ने उसे पृथिवीतल में पहुँचा दिया। वसु काल के सुपुर्द हुआ। मरकर वह सातवें नरक में गया। सच है जिनका हृदय दुष्ट और पापी होता है उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है और अन्त में उन्हें कुगति में जाना पड़ता है। इसलिए जो अच्छे पुरुष हैं और पाप से बचना चाहते हैं उन्हें प्राणों पर कष्ट आने पर भी कभी झूठ न बोलना चाहिए। पर्वत की यह दुष्टता देखकर प्रजा के लोगों ने उसे गधे पर बैठा कर शहर से निकाल बाहर किया और नारद का बहुत आदर—सत्कार किया।

नारद अब वहीं रहने लगा। वह बड़ा बुद्धिमान और धर्मात्मा था। सब शास्त्रों में उसकी गति थी। वह वहाँ रहकर लोगों को धर्म का उपदेश दिया करता, भगवान् की पूजा करता, पात्रों को दान देता। उसकी यह धर्म परायणता देखकर वसु के बाद राज्यसिंहासन पर बैठने वाला राजा उस पर बहुत खुश हुआ। उस प्रसन्नता में उसने नारद को गिरितट नामक नगरी का राज्य भेंट में दे दिया। नारद ने बहुत तक उस राज्य का सुख भोगा। अन्त में संसार से उदासीन होकर उसने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। मुनि होकर उसने अनेक जीवों को कल्याण के मार्ग में लगाया और तपस्या द्वारा पवित्र रत्नत्रय की आराधना के अन्त में वह सर्वार्थसिद्धि गया, जो कि सर्वोत्तम सुख का स्थान है।

साभार—आराधना कथाकोश पृ. 215—224

Let me bring Love

Lord make me an instrument of Thy peace

“where There is ”hate, ‘That I may’ bring love.

“Where There is ”offence, “That I may” bring pardon.

“Where There is ” discord “ that I may” bring union.

“Where There is ” error, “ That I may” bring truth.

“Where There is ” doubt. “That I may” bring faith.

“Where There is ” despair, “That I may” bring hope.

“Where There is ” darkness. “That I may” bring light.

“where There is ” sadness, “That I may” bring joy.

हे प्रभु मुझे अपनी शान्ति का एक यन्त्र बना।

जहाँ धृणा है, वहाँ मैं प्रेम ला सकूँ।

जहाँ आक्रमण है, वहाँ मैं क्षमा ला सकूँ।

जहाँ मतभेद है, वहाँ मैं मेल मिलाप ला सकूँ।

जहाँ भूल है, वहाँ मैं सच्चाई ला सकूँ।

जहाँ सन्देह है, वहाँ मैं विश्वास ला सकूँ।

जहाँ निराशा है, वहाँ मैं आशा ला सकूँ।

जहाँ अन्धकार है, वहाँ मैं प्रकाश ला सकूँ।

जहाँ उदासी है, वहाँ मैं प्रसन्नता ला सकूँ।

Saint Francis संत फांसिस

'मेरी भावना'

'My Prayer'

"रहे सदा सत्संग उन्हीं का ध्यान उन्हीं का नित्य रहे,
उन ही जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे।

नहीं सताऊँ किसी जीव को झूँठ कभी नहीं कहा करूँ,
परधन वनिता पर न लुभाऊँ संतोषामृत पिया करूँ॥"

May I always associate with such aforesaid Holymen;

May my mind be constantly occupied with their contemplation ;

May the longing of my heart be always to tread in their footstep ;

May I also never cause pain to any living being ;

May I never utter untruth ; and

May I never covet the wealth or wife of another !

May I ever drink the nectar of contentment !

कोई बुरा कहो या अच्छा लक्ष्मी आवे या जावे,

लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे।

अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे,

तो भी न्याय मार्ग से मेरा कभी न पग डिगने पावे॥

Whether people speak of me well or ill;

Whether wealth comes to me or departs;

Whether I live to be hundreds of thousand years old;

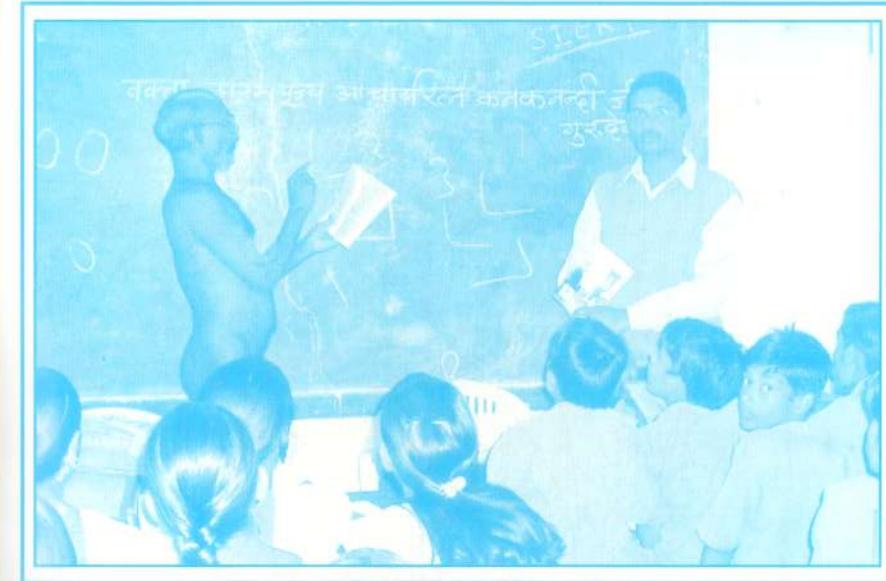
Or give up the ghost this day;

Whether any one holds out any kind of fear or with wordly riches he tempts me;

In the face of all these possible things may my foot steps swerve not from the path
of truth !

अर्थ पुरुषार्थ—

अर्थात् धनार्जन जो न्याय—नीति से अहिंसा पूर्ण उपाय से धनार्जन करके
परिवार पोषण, दान, परोपकार, साधु—संत की सेवा, धर्म प्रचार, दीन—दुःखी—रोगी—पशु—पक्षी
आदि के उपकार में लगाना चाहिए किन्तु वह धनार्जन प्रायः अन्याय पूर्ण नीति से,
हिंसापूर्ण व्यवसाय से नशीली वस्तु के क्रय—विक्रय से विविध प्रकार के भ्रष्टाचार—शोषण
आदि से करके फैशन—व्यसन आदि में अपव्यय करते हैं।



विद्यालय में विज्ञान एवं गणित का प्रशिक्षण देते हुए आचार्य कनकनन्दी
(परसाद-उदयपुर)



मुनि आध्यात्मनन्दी की दीक्षा के अवसर पर उपस्थित श्रद्धालु
(सागबाडा-राजस्थान)

आचार्य श्री द्वारा लिखित शोधपूर्ण ग्रंथ प्राप्ति के लिए संपर्क सूत्र :-

धर्म दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा :- श्री छोटलाल जी चित्तौडा, चंद्रप्रभ दि. जैन मंदिर आयड,

आयड बस स्टॉप के पास, उदयपुर - 313001 (राज.)

फोन :- (0294) 2413565, 6941114

